

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 6 अंक 2

अक्टूबर-दिसम्बर 2008

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

लोकेश चन्द्र

यशदेव शल्य

जे.एन.राय

रमेशचन्द्र शाह

सम्पादक

बी. बी. कुमार

आस्था भारती

दिल्ली

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपये
विदेशों में	\$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20.00 रुपये
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपये
विदेशों में	\$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	10,000.00 रुपये
अन्दर कवर	7,500.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ	5,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ	3000.00 रुपये

प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त

आस्था भारती

रजिस्टर्ड कार्यालय :

27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेंट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय :

12/604 ईस्ट एंड अपार्टमेंट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

से आस्था भारती के लिए डॉ. बी.बी. कुमार, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।

फोन : 011-22712454

ई.मेल : asthabharati@yahoo.com, asthab@vsnl.net

वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

विषय-क्रम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य	5
1. बोरोबुदुर : ब्रह्माण्ड ज्ञान का गुप्त या प्रच्छन्न आधार डॉ. लोकेशचन्द्र	9
2. तन्त्र या आगम और भाषा राममूर्ति त्रिपाठी	27
3. डायरी के पन्नों से रमेश चन्द्र शाह	33
4. पाँचवें भूटान नरेश का राज्याभिषेक : धर्मतन्त्र, राजतन्त्र और प्रजातन्त्र की अबूझ पहेली ए. सी. सिन्हा	40
5. हिन्दू इतिहास-बोध और रामायण शंकर शरण	51
6. आज भी खरे हैं तालाब	64
7. ललित-निबंध : आधुनिकता के संदर्भ में श्रीराम परिहार	81
8. हिन्दी भाषा और इण्टरनेट डॉ. साताप्पा लहू चव्हाण	86
9. पुस्तक-चर्चा : शंख-सिन्दूर ब्रज बिहारी कुमार	93
10. पुस्तक समीक्षा : आप्तलोक की तलाश की कहानियाँ संजय कुमार सिंह	96
11. पुस्तक समीक्षा : समग्र यथार्थ की कहानियाँ संजय कुमार सिंह	101
पाठकीय प्रतिक्रिया	105

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

आन्तरिक सुरक्षा के खतरे

देश में लगातार हो रहे बम-धमाकों के बीच कुछ नयी बातें उभर कर आ रही हैं, जो आश्वस्त नहींकरतीं। मुम्बई में हुए अद्यतन जेहादी धमाकों ने हमारी सुरक्षा तंत्र की पोल खोलकर रख दिया। मात्र दस जेहादी हमारे समस्त सुरक्षा कवच को भेदकर कराची (पाकिस्तान) से देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई में आये; अपने को छोटे छोटे दस्तों में बाँटकर ताज तथा ओबेराय ट्राइडेन्ट होटलों एवं नरिमन हाउस को कब्जे में लिया तथा एक ही साथ रेलवे स्टेशनों, एक अस्पताल तथा कई अन्य स्थानों पर स्वचालित अस्त्रों एवं विस्फोटकों के साथ धावा बोल दिया। यह आक्रमण इतना प्रभावी था कि इसका प्रतिकार करते हुए मुम्बई पुलिस के तीन अच्छे अफसर शहीद हुए - जिसमें मुम्बई पुलिस के आतंकवादी दस्ते का मुखिया, हेमन्त करकरे सामिल था। - शहीद हुए। इसके लिए त्वरित कारवाई दस्ते तथा सेना को लगाना पड़ा। कारवाई लगभग साठ घंटे चली, जिसमें 185 लोग मरे तथा 327 घायल हुए। मरनेवालों में बीस विदेशी नागरिक, 9 आतंकवादी जेहादी तथा बीस सुरक्षा-कर्मी सामिल थे।

जेहादी आतंकवाद की शुरूआत जम्मू-कश्मीर से हुई थी। जल्द ही यह सारे देश में फैल गयी। स्थिति यह है कि इस वर्ष नवम्बर 2008 तक देश में 18 शहरों में 48 आतंकवादी वारदातें हुईं। पिछले 13 महीनों में उत्तर प्रदेश के तीन शहरों में न्यायालयों के सामने हुए धमाकों के बाद जयपुर, बंगलौर, अहमदाबाद, सूरत, दिल्ली, गौहाटी, और अब 26 नवम्बर को मुम्बई में जेहादी आतंकवादी वारदातें हुईं। एकतरफ देश के हर भाग में - विदेशों में भी काबुल के भारतीय दूतावास में - आतंकवाद की वारदातें बढ़ती जा रही हैं, दूसरी तरफ हम हर बार इन्हें नहीं बर्दास्त करने की बात, 'जीरो टालरेन्स' की बात करके अपनी अकर्मण्यता तथा नपुंसकता दिखाते जाते हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? स्पष्टतः हमारी आन्तरिक कमजोरियाँ हैं।

विदेशों में जब कभी आतंकी वारदातें होती हैं तो सारा देश एकजुट ही जाता है; राजनीतिक दल आतंकवादियों के खिलाफ एक स्वर से बोलते हैं; आतंकी वारदातें उन्हें जोड़ती हैं। भारत में ठीक उल्टा होता है। उस समय जब हमारे समवेत स्वर की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, हमारे राजनीतिक दल, बौद्धिक वर्ग, समाचार माध्यम अलग अलग परस्पर विरोधी सुरों में बाँटे करना शुरू करते हैं; आतंक का राजनीतिक लाभ लेने की होड़ लग जाती है। इससे देश के शत्रु लाभान्वित होते हैं; आतंकियों का मनोबल बढ़ता है। आतंकवाद इस प्रकार हमें जोड़ता नहीं, बल्कि भीतर से तोड़ता नजर आता है।

मुम्बई में मात्र दस पाकिस्तानी आये थे और उन्होंने उस बड़े नगर को साठ घण्टे तक बंधक बनाकर रखा था। ऐसे में अपनी अन्य कमजोरियों पर नजर डालकर हम स्थिति की भयंकरता का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। ये कमजोरियाँ हैं:

- (क) देश के प्रायः हर कोने में बांगलादेशी घुसपैठियों की उपस्थिति; इनकी संख्या दो करोड़ के लगभग है और देश की राजधानी दिल्ली के लाखों घरों में इनका नित्य का प्रवेश है। इस देश की आतंकवादी वारदातों में उनकी संलिप्तता की काफी जानकारी समाचार माध्यमों द्वारा दी जाती रही है।
- (ख) हजारों पाकिस्तानी नागरिक वैध दस्तावेजों के सहारे भारत आकर गुम हो जाते हैं; वापस नहीं जाते।
- (ग) सीमाओं का सदोष प्रबंधन;
- (घ) थोक-व्होटीयों की राजनीति; राजनीतिक दूर दृष्टि तथा अपेक्षित इच्छा-शक्ति का अभाव; राजनीतिक दलों/नेताओं की स्वार्थपरता; उनके राष्ट्र-विरोधी कार्यों में संलिप्तता; जैसे: अवैध घुसपैठियों/आतंकवादी संगठनों/ व्यक्तियों को खुली या अपरोक्ष सहायता पहुँचाना;
- (ङ.) आतंकवाद के प्रति राज्य का नरम व्यवहार;
- (च) व्यवस्था की शिथिलता; पिछले मुम्बई काण्ड में आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था की बहुस्तरीय अनदेखी/कार्य शिथिलता के समाचार मिले।
- (छ) आतंकवादी जाँच-प्रक्रिया में बाधा पहुँचाना; उसके राजनीतिकरण; जाँच एजेंसियों/पुलिस आदि पर साम्प्रदायिक होने के गलत आरोप।
- (ज) देश का साम्प्रदायिक घुवीकरण कराकर भीतर से कमजोर करने के प्रयत्न; थोक मुसलिम मतों के लिए प्रचार सामग्री मुहैया कराया जाना कि मुसलमानों के साथ न्याय नहीं किया जाता।
- (झ) वैचारिक स्तर पर सभी तरह के आतंकवादियों से लड़ने की अक्षमता; बौद्धिकों, समाचार माध्यमों, राजनीतिकों द्वारा भ्रम फैलाना; राष्ट्रीय/सरकारी स्तर पर स्पष्ट नीति का अभाव।
- (ञ) जेहादी मानसिकता बढ़ाने वाले संगठनों को प्राप्त विदेशी आर्थिक सहायता पर रोक न लगाया जाना।
- (ट) उच्चतम राष्ट्रीय स्तर से आतंकवाद/आतंकवादी संगठनों/आतंकवाद को सहायता पहुँचानेवाले देश पाकिस्तान के प्रति गलत बयानी; देश में भ्रम फैलाना।
- (ठ) देश की इच्छा-शक्ति को तोड़ने के प्रयास; जैसे एक पत्रकार का विचार कि कश्मीर पाकिस्तान को सौंप देना चाहिए।
- (ड) देश में बढ़ती अतिशय दोषदर्शिता (cynicism);
- (ढ) अपनी बात मनवाने के लिए हिंसा/तोड़फोड़ आदि का सहारा लेना;

(ण) जेहादी आतंकवाद, आदि की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू आतंकवाद की शुरुआत (यदि मुम्बई पुलिस के आतंकवाद विरोधी दस्ते की कार्रवाई का कारक राजनीति नहीं है और उसकी जाँच की दिशा सही है); हिन्दुओं में जेहादी आतंकवाद एवं थोक मतों की राजनीति के प्रति बढ़ता आक्रोश।

(त) सभी तरह के आतंकवादी संगठनों के बीच बढ़ता गठजोड़;

(थ) देश को अस्थिर बनाने के भारत के पड़ोसियों के प्रयत्न; इत्यादि।

स्पष्टतः स्थिति चुप बैठे रहने की नहीं है। सबको मिलकर - विशेषतः सभी राजनीतिक दलों को - नीतिगत पहल करनी चाहिए। साम्प्रदायिक सौहार्द, गणतांत्रिक तौर तरीकों में विश्वास, आतंकवाद का अंत, समाज के आर्थिक रूप से विपन्न लोगों तक विकास के लाभ का पहुँचाया जाना, अवैध घुसपैठियों से मुक्ति जैसी समस्याओं पर तो तुरत पहल की जानी चाहिए। अद्यतन मुम्बई आतंकी काण्ड, के बाद जिस तरह का जन-आक्रोश दिखायी दिया था, यदि उसके कारकों पर नियंत्रण नहीं किया जा सका तो अराजकता को बल मिलेगा, जो राष्ट्र, गणतंत्र तथा राजनीतिक दलों के लिए शुभ नहीं होगा।

ब्रज विहारी कुमार

बोरोबुदुर : ब्रह्माण्ड ज्ञान का गुप्त या प्रच्छन्न आधार

डॉ. लोकेशचन्द्र*

अनु. बाबूराम वर्मा**

बोरोबुदुर मेरे हृदय की रमणस्थली है। इण्डोनेशिया की मौखिक परम्परा के अनुसार यह अपने निर्माणकर्ता गुणधर्म के विचारों का प्रतिबिम्ब तथा चिरकाल तक टिका रहने वाला प्रतीक है। अपनी भूमि की गरिमामयी विरासत के भव्य काव्य की महिमा का सिलुहट बना वह मनोरेह पर्वतमाला में स्वप्नलीन यहाँ सोया हुआ है। यहाँ के भू-दृश्य की विशिष्ट बनावट और अलंकृत सुमेरु उसके मानस के स्वर और लय हैं। सजीव और पवित्र रहस्य की अपनी प्रतीकात्मक पुण्यता में उसने अर्थ और सौन्दर्य को एकात्म कर लिया है जिससे इतिहास जन्म धारण करता है। विगत तीन महीनों से मैं उन्हीं के विचारों, ब्रह्माण्ड ज्ञान और सौन्दर्य विधान की तहों तक पहुँचने के प्रयास में लगा रहा हूँ। इस अवधि में मेरे अन्दर एक ऐसी भावना उभरकर आगे आई कि अब से 1200 वर्ष पूर्व, यदि मैं उनका शिष्य रहा होता तो पावन सुमेरु सम्बन्धी उनकी विचारधारा, उसके आकल्प और उसकी निर्मिति में भागीदार बना होता तो कितना अच्छा रहा होता। सांस्कृतिक, बल्कि इससे भी कहीं अधिक महत् सौन्दर्य अज्ञेय की अनन्तता में हमारे भीतर घुमड़ता रहता है। प्रत्येक गहराई के नीचे उससे भी अधिक गहरा तल खुलता है। गुणाद्वय एक प्रतिभा थे जिन्होंने दार्शनिक, वास्तुशास्त्रीय और कलात्मक विचारों को अनेक ग्रन्थों में लिखित परम्पराओं से एकत्र करके एक महान सृजन में पुंजीभूत कर दिया।

स्मारकों के आश्चर्य के सौन्दर्य में समाई हुई है दृश्यगत गूढ़ता द्विदिश रचना में संग्रहकारी और समन्वयकारी वह एक साथ दोनों है। वह अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध बहुस्तरीय शिक्षाओं को बौद्ध परम्पराओं की समादृत पद्धति के अनुसार एक ही पद्धति में फलीभूत करने का पथ अनुसरण करता है।

* प्रकाण्ड विद्वान, पूर्व सांसद (राज्य सभा),

** उत्तरगिरि, 67 बल्लुपुर, देहरादून

2. बोरोबुदुर की वैचारिक भूमि की व्याख्या अभी तक तीन अभिधारणाओं में की गई है।

- बोरोबुदुर को एक स्तूप माना गया है। परन्तु यह तो एक सुमेरु है। जिसके उच्चतम स्तर पर एक स्तूप रच दिया गया है।*
- इसकी रचना प्रणाली की व्याख्या इन त्रिधातुओं को संदर्भ में रखकर की गई है कामधातु, रूपधातु, और अरूप्यधातु, जिनका वर्णन अभिधर्मकोश में मिलता है। कामधातु में अस्तित्व के छह स्तर मिलते हैं नरक, पशु, प्रेत, असुर, मनुष्य और देव। रूपधातु की चार भूमियाँ हैं जबकि अरूप्यधातु में अरूपावचर देव रहते हैं। (मात्सुनागा, पृ. 55)। भित्तिचित्रों, सम्पूर्ण पवित्रस्थली वास्तुकर्म और बुद्ध की विशाल 504 मूर्तियों का अभिधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रच्छन्न आधार में भी ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि बोरोबुदुर की अभिकल्पना में त्रिधातु प्रणाली कहीं निहित है। त्रिधातु ध्यान भूमियाँ हैं जो ललित विस्तर की विदर्शना के चतुर्थ संभार में मिलती हैं। बोरोबुदुर इन चार संभारों का प्रतिनिधि है। (आगे की कण्डिका 4 देखें)।*
- अभी तक यही मानकर चला गया है कि चित्रमय भित्तिचित्रों के निर्माण में एक ही ग्रंथ को आधारस्वरूप लिया गया है। टीकाओं, अनुष्ठान मैनुअलों अथवा उसी वर्ग के अन्य ग्रन्थों से ब्योरों को सम्पूरित किए जाने की संभावना कभी उठाई ही नहीं गई है।*

3. बहुस्तरीय रचनाएँ इयान फोन्तेन कहता है, “उस ग्रन्थ का जिसने बोरोबुदुर के मूर्तिकारों के शिल्प का मार्गदर्शन किया, सही-सही बता पाना संभव नहीं है।” (पृ.73)। फोन्तेन यह प्रश्न उठाता है “वह क्या कारण था जिसने बोरोबुदुर के भिक्षुओं को इन ग्रन्थों की गण्डव्यूह और भद्राचारी और अपने स्मारक का यह सुविस्तृत चित्रण करने के लिए आकर्षित किया। फोन्तेन आगे यह लिखता है जिस ग्रन्थ का बोरोबुदुर के मूर्तिकारों ने अनुसरण किया उसमें परमार्थ द्वारा अनूदित किए ग्रंथ से काफी भिन्नता बरती गई है।” (पृ. 42) परमार्थ द्वारा अनूदित ग्रंथ लोकप्रज्ञप्ति है। बोरोबुदुर का महाशिल्पी भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से अपनी सामग्री का चयन तो करता ही रहा था। वह उनमें नवीनताएँ भी मिलाता रहा था।

पश्चिम की एक केन्द्रित धार्मिक विचारधारा ने एक ही स्रोत से बोरोबुदुर की, अर्थात् त्रिधातुकोश अथवा तीन लोकों की अभिधर्म पद्धति से, व्याख्या किए जाने को प्रभावित किया है। दूसरी ओर बौद्ध धर्म की भिन्न-भिन्न परम्पराओं अथवा ग्रंथों का समन्वय करने का विचार एक आम घटना रहा है। पूर्वतर परम्पराओं को जहाँ अन्तिम परिणति तक पहुँचाने वाली सीढ़ियों के रूप में देखा जाता था, समर्थन किया जाता था। स्थानीय वर्णनाओं से समतास्थापन करने की आवश्यकता भी नई आकृतियाँ

बनाने अथवा चीनी-जापानी बौद्ध धर्म का नौ चतुष्कोणक वज्रधातुमंडल, चीनी विचार सरणि में नौ की प्रमुख भूमिका, वहाँ के राजप्रासाद में नौ महाशाल होने, पावन जगत के नौ विभाग होने के कारण है। पेचिंग को जापान में मन्त्रयान (शिंंगोन) के संस्थापक कोबोदायशि (ई. 774-835) “नौ वार्डों या मुहल्लों वाला” कहते हैं। उसने आध्यात्मिक विकास की दस अवस्थाएँ बताई हैं। (कन्फूसियसवाद; ताओवाद, शिन्तो, ब्राह्मणवाद, श्रावक यान, प्रत्येक बुद्ध मार्ग, मध्यमक, योगाचार और अवतंसक जिसका समाहार मन्त्रयान में होता है। धर्मसमुद्र और साथ-साथ विद्यमान धर्म और दर्शनों का यह महान संश्लेषण था। इंदोनीसिया में भी साड ह्याड कमहायनिकन (एसएचके-संक्षेप में) महामार्ग = परम मार्ग और महागुह्य में किया गया नया वर्गीकरण है। महामार्ग: छह पारमिता, चार ब्रह्मविहार, दस पारमिता, पाँच देवियाँ। महागुह्य : चार प्रकार के योग, चार भावनाएँ, चार आर्य सत्य, दस पारमिता हैं। (विस्तार के लिए कल्चरल होराइजन्स ऑफ इंडिया में एस एच के के मेरे संस्करण का 4. पृ. 295-434 देखें)।

4. चार संभार प्रणाली बोरोबुदुर की परिकल्पना करनेवाला गुणधर्म पावन सूत्रों को एक साथ झपाटे से लेने वाला विलक्षण चिन्तक था और उसके बिम्बों में रूप और प्रतीकों की महानता मिलती है। गूढ़ और सुन्दर की सुसंगति में मानवी और दैवी के निमज्जन में उन्होंने अपना सारतत्व खोजा। बहुल सूत्रों को ललित विस्तर (पृ. 35, 12) के चार संभारों, पुण्य संभार, ज्ञात संभार, शमथ संभार और विदर्शना संभारके आधार पर समेकित कर एक नई रचना तैयार की। इन चार संभारों का दृश्यरूप नीचे की सारणी में दिखाया गया है

संभार	स्मारक	भित्तिचित्र	वैरोचन
विदर्शना संभार	आकाश खुला स्तूप	कोई नहीं	वज्रधातु वैरोचन
शमथ संभार	जालीदार स्तूप चतुर्थ दीर्घा द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ दीर्घाएँ	ललित विस्तर भद्रचारी गण्डव्यूह	दुर्गातिपरि शोधक वैरोचन
ज्ञान संभार	प्रथम दीर्घा Ib, II B प्रथम दीर्घा Ia प्रथम व द्वितीय दीर्घाएँ I Ba, IIB	अवदान ललित विस्तर जातक	
पुण्य संभार	प्रच्छन्न या गुप्त आधार	वैरोचनाभ सम्बोधि लोक प्रज्ञप्ति कर्म विभंग	तन्त्र अभि- सम्बोधि वैरोचन

बोरोबुदुर की वैचारिक परिकल्पना यद्यपि चार संभारों पर आधारित है, दृश्यतः वह अनेक ग्रंथों की प्रतिनिधि है, ये विदर्शना की तैयारी बताते हैं। विदर्शना तीन प्रभु

प्रकाशों में वैरोचन के अध्यात्मिक जगत का आरोही प्रतिरूप है अभिसम्बोधि-वैरोचन, दुर्गातिपरिशोधन-वैरोचन जिनका समाहार आगे चलाकर वज्रधातु वैरोचन में हो जाता है।

बोधिसत्व को अपनी पारगामी प्रज्ञा और प्रज्ञादायों द्वारा अपने मार्ग शोधन कर सभी प्रारम्भिक संभार व्रतों द्वारा अपने को सुसम्पन्न बनाना होता है। वह आकाश की भाँति निस्संग है तथा सभी वस्तुओं पर शून्य की भाँति झरकर नीचे आता है (सुजूकी, 1930 : 227)। संभार उस स्तर की नैतिक सामग्री है जो अ-बहिर्प्रवाह स्थिति से आगे चलकर वहाँ आती है, जहाँ वे उस समय तक रहते रहे थे। (वही, पृष्ठ 361)। कर्म विभंग की विभिन्न ग्रन्थों में पुण्य प्राप्ति का विवेचन किया गया है। ज्ञान पारगामी जानकारी है जो व्यावहारिक जानकारी, विज्ञान से पृथक्तया भिन्न है। समथ या क्षान्ति मन को सौम्य और अविशुद्ध बनाए रखने की कला है तथा विदर्शना सर्वोच्च स्तर पर किया गया ध्यान है। जीवन कार्यों (कर्म विभंग) से गुणात्मक सम्पर्क बनाने से आरम्भ करके साधक पार्थिव जगत से ऊपर के विदर्शना के स्पन्दनों पर पहुँच वहाँ आरूढ़ हो जाता है।

चार संभार दो स्पष्ट श्रेणियों में द्विदिश करके दिखाए गए हैं

(i) भित्तिचित्रों में, और

(ii) सुमेरू और बड़ी मूर्तियों वाले समग्र वास्तुकर्म में।

भित्तिचित्र पहले तीन संभारों और वास्तुकर्म चौथे और समाहारकारी विदर्शना संभार का प्रतिनिधित्व करते हैं।

5. इसका गुप्त या प्रच्छन्न आधार पुण्य संभार अर्थात् सुकर्म और दुष्कर्म तथा उनके परिणाम हैं। बोरोबुदुर के अधोस्तर में कर्मविभंग रखने की संगति या औचित्य क्या है? आचार सम्बन्धी दोष और दुष्कर्म नरक में ले जाते हैं और जैसे-जैसे कोई पुण्य की ओर बढ़ता जाता है उसका जन्म स्वर्ग में किसी आनन्दमयी स्थली पर होता है। नैतिक कर्तव्यों के प्रतीक बौद्ध धर्म में शिंकालोवाद सुतन्त में मुख्य बना गए हैं और उसे ही सम्राट अशोक के धम्म का स्रोत भी स्वीकार किया जाता है। हाजिमे नाकामुरा ने आधुनिक बर्मी बौद्ध धर्म (*शाकुसन नो कोतोबा, तोक्यो, 1960, 244-45*) में इस सूत्र का महत्त्व दिखाया है। इस सूत्र के चार चीनी अनुवाद मिलते हैं : 148-170 ई. आन शिह काव द्वारा किया अनुवाद; 301 में धर्मरक्ष का किया अनुवाद; 397-98 ई. में गौतम संघदेव का किया अनुवाद, जो मध्यमकागम ग्रंथमाला में सम्मिलित है और 413 ई. में दीर्घागम के अन्तर्गत किया हुआ बुद्धयशस् का अनुवाद। बौद्ध धर्म के इतिहास में श्रावकों के लिए नैतिकता का केन्द्रीय स्थान पर होना महत्त्वपूर्ण है। बोधि तक पहुँचाती, आध्यात्मिक सीढ़ियों वाले दूसरे स्तर तक ले जाने वाला यह पहला पग था। एक पालिग्रंथ का उद्धरण देखें

“कर्म अपने ही होते हैं, वो कर्मों का उत्तराधिकारी है, कर्म ही व्यूह हैं, कर्म बंधु

हैं, कर्म ही निर्णायक हैं, कर्म जीवों में निम्नता, उत्तमता लाकर उन्हें भिन्न-भिन्न बनाते हैं।” यह *मज्झिमनिकाय* के *चुल्ल-कम्म-विभंग-सुत्त* का कथन है (हैर्नर (1977:3:253)। इस शुभ सुत्त भी कहा जाता है क्योंकि इसका उपदेश राजा प्रसेनजित के ब्राह्मण पुरोहित तोदेय्य के पुत्र शुभ को दिया गया था। तोदेय्य अपने ही घर में श्वान बनकर जन्मा और जब बुद्ध शुभ से भेंट करने आए तो वह उन पर भौंकने लगा। बुद्ध ने शुभ को कुत्ते की पहचान, उससे एक निधि पहचनवा कर कराई जिसे मानव रहते समय उसने घर में किसी जगह छिपाया था। इसका पालि पाठ है। कम्म-स्सका, माणवा, सत्ता, कम्म-दायादा कम्म-योनि कम्म-बन्धु।’ कम्म पतिसरणाकम्मं सत्ते विभजति यद इदं हीनप्पणिततायाति। बोरोबुदुर के आधार में बने ये भित्तिचित्र हीन कर्मों और उत्तम (प्पणित) योनियों में पुनर्जन्म होने का द्विदिश लक्षण प्रतिबिम्बित करते हैं।

6. गुणधर्म ने गुप्त या प्रच्छन्न आधार में कई ग्रन्थों का अनुसरण किया। उसका प्रधान स्रोत *कर्म विभंग* के विभिन्न संस्करण, *लोकप्रज्ञप्ति* और *वैरोचनाभिसम्बोधि* प्रतीत होते हैं जिनका व्योरो में तथा दृश्य प्रभाव बढ़ाने के लिए उपयोग किया गया।

सुकर्म और दुष्कर्म का विवेचन अनेक बौद्ध सूत्रों में किया गया मिलता है। (*अंगुत्तर निकाय 4, 427; दशभूमक सम्पा. राहडेर 26 लोक प्रज्ञप्ति शास्त्र, कारण प्रज्ञप्ति शास्त्र (कौस्मोलोजी बौद्धिकि, 1914-18, 298, 325, 347)*)। सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ *शुक सूत्र* था, जिसका अन्य नाम कर्म विभंग भी है। शुक सूत्र दूर-दूर तक प्रचलित ग्रन्थ है। शुक इसमें पालि नाम शुभ की जगह आया है। शुभशुक। इसका तीसरी, पाँचवीं, छठी और दसवीं शताब्दी में चार बार चीनी अनुवाद किया गया। चीनी में किए गए अनुवादों का ब्यौरा आगे दिया जा रहा है

(क) 265-317 में किया गया अनामी अनुवाद

चिन तू तियाव चिड, तू तियाव को कहा गया सूत्र; तूतियाव पूर्व जन्म का ब्रह्मचारी तोदेय्य ही है।

(ख) 435-443 में गुणभद्र द्वारा किया गया अनुवाद।

चिन यिड वू चिड; शुक को कहा गया सूत्र।

(ग) 582 में गौतम धर्मप्रज्ञ द्वारा किया गया अनुवाद

चिन येह पाव चा पिच चिड; कर्म के विभिन्न परिणामों का सूत्र।

(घ) 984 में तिएन हसि-त्सई द्वारा किया गया अनुवाद

चिन फेह सिच शान ए पाव यिड चिड; अच्छे-बुरे कर्मों का परिणाम समझाने वाला सूत्र।

इसके भोट भाषा में दो अनुवाद हुए।

(ङ) जिनमित्र, दसशील, मुनि वर्मा व ये सेस्-स्दे कृत *कर्म विभंग*

(च) अज्ञात अनुवादक कृत *कर्म विभंग नामधर्म* ग्रंथ।

सुकर्मों और दुष्कर्मों का विवेचन करते दो अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं

(क) मध्यमागम सूत्र, 170, गौतम संघदेव द्वारा 397-98 में अनूदित।

(ख) लोक प्रज्ञप्ति, परमार्थ द्वारा 558 या 569 में अनूदित। उन्होंने अभिधर्मकोश का प्रथम अनुवाद किया। चिन लि शिह आ पि तान लुन, लोकप्रज्ञप्ति अभिधर्मशास्त्र। नरक में पुनर्जन्म होने के चित्र कर्मविभंग की अपेक्षा इस ग्रंथ के विवरणों में काफी ज्यादा मिलते हैं। (फोन्तेन, पृ. 35)

7. लोक प्रज्ञप्ति इयान फोन्तेन के नए अध्ययनों ने सिद्ध किया है कि भित्तिचित्रों का अनुक्रम महाकर्म विभंग के संस्कृत पाठ से नहीं मेल खाता। इसके बजाय ये भित्तिचित्र गौतम धर्मप्रज्ञ के पाठ (ए) के ज्यादा निकट हैं। तथा कुछ भित्तिचित्रों का ब्योरा तो लोकप्रज्ञप्ति से मेल खाता है। प्रो. र्यूशो हिकाता ने निम्नलिखित फलकों को लोकप्रज्ञप्ति : 86-89, आठ महानरकों से सहसम्बन्धित किया है

90-92 कुकूल, कुणय (90), क्षुरधारा, अयः शात्मली वन (91), असिपत्र वन, क्षारनदी (92)। ये अभिधर्मकोश शास्त्र, अध्याय 11 से लिए हुए, महाव्युत्पत्ति (सं. 4929-4944) सोलह नरकों में से हैं।

93-96 छह दुर्गतियों में जन्म : पक्षी, पशु, गरुड़, नाग, प्रेत, असुर।

97-100 सद्गति में जन्म : मनुष्य।

101-108 सद्गतियों में जन्म : कामावचर व रूपावचर लोकों में देव।

123-160 लोक प्रज्ञप्ति अध्याय 62-71 के प्रतिनिधि हैं।

हिकाता का कथन है कि अध्याय 23-26 और 40-58 के भित्तिचित्र नहीं हैं। प्रतीत होता है लोक प्रज्ञप्ति ब्योरों के लिए सम्पूरक स्रोत रहा होगा। भित्तिचित्र 86-92 में नरकों का ब्योरा कर्म विभंग की अपेक्षा इस ग्रंथ के ज्यादा निकट है (फोन्तेन पृ. 35)।

कर्म प्रणाली की छह योनियाँ अभिधर्म की छह ध्यान स्थितियों से भिन्न है। डब्लू. एफ. स्टुडटरहाइम ने सुझाया है कि प्रच्छन्न आधार कामधातु को प्रतीकित करता है। (स्टडीज इन इन्डोनीसियन आर्कइलोजी , 1956:37)। कामधातु भूमि के अंदर का नरक वास नहीं है जैसा कि प्रच्छन्न आधार से समझा जाएगा। ये तीनों लोक किसी भौगोलिक क्षेत्र में बने क्षैतिज अस्तित्व वाले नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ हैं। निचिरेन ने इन लोकों की आन्तरिक प्रकृति पर बल दिया है। “जहाँ तक इस प्रश्न की बात है कि नरक और बुद्ध ठीक-ठीक कहाँ पर स्थित है, तो एक सूत्र में पाठ है कि नरक पाताल में है और दूसरा सूत्र कहता है कि बुद्ध पश्चिम में हैं। तथापि गहराई से परीक्षण करने पर विदित होता है कि ये दोनों हमारे पाँच फुटे शरीर में ही विद्यमान हैं।”

“तो फिर ये लोक हैं क्या? निम्नतम से अधिकतम वांछनीय तक चलते हुए ये हैं नरक; निराशा की ऐसी स्थिति जिसमें कोई जीव दुःखों से पूरी तरह पराभूत हो जाता

है; बुभुक्षा, ठगनेवाली ऐसी इच्छाओं से शासित स्थिति जिन्हें पूरी तरह से कभी संतुष्ट ही नहीं किया जा सकता; पशुता स्वभाव प्रेरित बलवान से भय खाने और कमजोरों पर धौंस गाँठने की स्थिति; क्रोधऐसी स्थिति जिसका लक्षण दूसरों से बढ़ने और उनपर शासन चलाने, बहुधा अच्छा और बुद्धिमान होने का ढोंग करने की अदमनीय प्रतिस्पर्धात्मक उत्तेजना होती है। ये चारों स्थितियाँ चार कुटिल पथ कही गई हैं। क्योंकि ये विनाशकारी नकारात्मक हैं जो इनका स्पष्ट चिह्न है।

“आगे बताते हुए, मानवता शान्त स्थिति है जिसका चिह्न तर्क करने, शान्तिपूर्ण निर्णय कर सकने की योग्यता है। यह मानव रूप में हमारी पहचान का आधारभूत तत्त्व है, परन्तु यह स्थिति भंजनशील संतुलन को भी प्रतिनिधित्व कर सकती है जो नकारात्मक दशाओं से सामना होने पर किसी निम्नतर स्थिति के आगे झुक जाती है। परमानन्द आनन्द की ऐसी अवस्था या स्थिति है जिसका विशिष्ट अनुभव उस समय होता है जब कोई इच्छा पूरी हो जाती है और दुःख से बचाव हो जाता है। इन सभी संसारों को कभी-कभी छह निम्नतर संसारों या जगत में एक साथ कर एक वर्ग में रख दिया जाता है।” (लोकेशचन्द्र डिक्शनरी ऑफ बुद्धिस्ट आइकनोग्राफी, 2000, : 2 555)।

रूपावचर देव रूपधातु में बसते हैं जो ध्यान की चार अवस्थाओं अथवा ध्यानभूमियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चारों ध्यानभूमियों का ब्योरा अभिधर्मकोश में दिया गया है। त्रिधातु विश्व के ब्रह्माण्डीय स्थल नहीं है। इन्हें हम ब्रह्माण्ड ज्ञान की धारणाएँ और व्यवहार कह सकते हैं।

देवयोनि प्राप्त कर लेने के बाद व्यक्ति दैवीय बन आध्यात्मिक स्तरों से एकाकार हो, सारतत्त्वों के लोक में ऊपर पहुँच जाता है। देवोभूत्वा देवं अर्चयेत्/देव बनकर देवत्व की अर्चना करता है। साधक ने सभी पापों और पुण्यों का परित्याग कर दिया है और अब वह अपनी साधना की सहायक आध्यात्मिक स्थितियाँ ग्रहण करने को तैयार है। शैव शब्दावली में उसका शिवीकरण पूर्ण हो चुका है अर्थात् शिव से वह एकाकार हो गया है। शिवीकरण पारिभाषिक बालि में अभी भी मिलता है।

ध्यान और कर्मकाण्ड से मिली शक्ति के कारण साधक अभिधर्म के तीनों लोकों (त्रिधातु) : कामधातु (कामनाओं का लोक), रूपधातु (घटना लोक) और अरूपधातु (आत्मा के रूपहीन लोक) से पार चला जाता है। वह पदार्थ के विचार और पदार्थ के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। ये लोक की स्थितियाँ हैं जिनमें ध्यान की तुल्यता प्राप्त करते हुए व्यक्ति रहा करता है। (सोक गक्कई, डिक्शनरी ऑफ बुद्धिज्म, 2002:804)।

पुण्य संभार की छह योनियों को, जैसा कि उन्हें कर्म विशेष शैली का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रच्छन्न आधार में चित्रित किया गया है, अभिधर्म की त्रिधातु से पृथक तथा भिन्न समझा जाना चाहिए, क्योंकि वे दैवीकरण तक ले जाती

और फिर वहाँ से वैरोचन के एकनिष्ठ स्वर्ग में ध्यानभूमियों तक पहुँचाती सीढ़ियाँ हैं।

8. वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र और प्रच्छन्न भित्तिचित्र प्रच्छन्न आधार के 160 भित्तिचित्रों में 60 भित्तिचित्र योगपट्ट से बंधे बैठे हुए व्यक्ति के हैं। ये 60 चित्र अशुद्ध मन की 60 अवस्थाओं से सम्बन्धित हैं जिन्हें बोधित्त की प्राप्ति के लिए पार करके आगे बढ़ना होता है। (मावित्रज, 1991:35)। ताजिमा (वेमैन 1993:261) इन्हें 'भूल करते हृदय' कहता है। बुद्ध वज्रपाणि को इन 60 हृदयों के विशिष्ट लक्षण गिनाते हैं और एक-एक करके समझाते हैं; उदाहरण कि "लोभ का हृदय क्या है?" यह ऐसा हृदय है जो अशुद्ध धर्मों से अपने को जोड़ता है।" अच्छे हृदय थोड़ा-थोड़ा करके सुधरते हैं क्योंकि वे साठ बुरी प्रवृत्तियों से घिरे हुए होते हैं जो इस सुधार को आपदग्रस्त कर डालते हैं और जिनसे इसे छुटकारा भी दिलाया जाना चाहिए (ताजिमा, पृ. 296)। इन साठ मनो को कभी-कभी उपमाओं द्वारा भी अभिव्यक्त किया गया है। उदाहरण कुते (29) का अर्थ है वस्तुओं से प्रसन्न हो उठने वाला भले ही वे थोड़ा-सा ही क्यों न हो", यह हौज का किया रूपांतरण है अथवा 'थोड़ा-सा जो मिल जाए उसी से सन्तुष्ट हो जानेवाला।' यह यामामोतो के किए अनुवाद में है। इनकी कुछ श्रेणियाँ तो स्पष्टतया विशिष्ट हैं और भित्तिचित्रों की पहचान करने में हमारी सहायक हो सकती हैं। पशुओं के नाम पहचाने जा सकते हैं : बिल्ली 28, गिरगिट 47, कौआ 28, कुत्ता 29, गरुड़ 30, सिंह 36, चूहा 11, उलूक 37, सर्प 17, नृत्य के दृश्य 33, सूर्य 34, और गीत 32 कुंजियाँ दे सकते हैं। प्राकृतिक घटनाओं को भी भित्तिचित्रों से सह-सम्बन्धित करना कठिन नहीं है : बादल 53, खेत 54, अग्नि 44, सागर 58, तडाग 24, नदी 23, सुमेरु 57, कूप 24। भित्ति चित्र में नर्तकी 72, नृत्य के 33वें मन का प्रतिनिधित्व करती है जो समझता है कि अपने विविध कौशलों से वह अन्य लोगों को उत्तेजित कर डालेगा। फोन्तेन ने सोचा कि उसमें नर्तकी को मन हटाने के लिए जोड़ा गया है। वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र का भोट भाषा में मिलती उसकी टीकाओं और मूल संस्कृत ग्रन्थों के चीनी अनुवादों तथा देशी व्याख्या ग्रंथों के साथ मिलाकर भित्तिचित्रों की कुंजी प्राप्त करने के लिए अययन करना होगा।

साठ में से निम्नलिखित अवस्थाएँ भित्तिचित्रों में देखी जा सकती हैं : प्रावस्था 16 असुर : भित्तिचित्र 86; 17 सर्प : 94; 22 कृषक : 65, 122; 23 नदी : 92, 118; 24 तडाग : 9, 147; 25 कूप : 90; 28 बिल्ली : 105; 29 कुत्ता : 4, 22, 53, 86, 87, 88, 92; 30 गरुड़ : 94; 31 चूहा : 65, 87; 32 गीत : 125, 151; 33 नृत्य : 72, 149; 34 तूर्य : 1, 52; गृह : 119; 36 सिंह : 105, 67; उलूक : 4; 38 कौआ : 12, 41, 86, 105, 118; 40 कंटक : 87, 92; 43 जल : 30, 90; 44 अग्नि, 2, 88, 89, 109, 110; 47 गिरगिट : 118; 50 विष : 14, 18; 51 पाश : 9, 49; 52, हथकड़ियाँ : 113; 53 बादल 66, 118; 56, उस्तरा : 86, 87, 91; 58 सागर : 109; 59 छिद्र : 87।

योगपट्ट वाले साठ भित्तिचित्र हैं, 9, 10, 11, 17, 18, 20, 27, 31, 32, 33, 36, 37, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 47, 50, 52, 53, 56, 59, 62, 64, 68, 69, 70, 72, 74, 94, 96, 98, 100, 101, 102, 103, 106, 111, 113, 115, 117, 124, 125, 126, 127, 130, 132, 133, 134, 136, 144, 148, 149, 150, 153, 154 और 156।

160 हृदय पाँच मूलक्लेशों को 2 के प्रघात (5×2^5) से गुणित करने पर प्राप्त होते हैं। पाँच मूलक्लेश है *राग, प्रतिघ, मोह, मान* और *विचिकित्सा*। इस तरह से पाँच मूलक्लेश $\times 2^5 = 160$ क्लेशयुत हृदय (ताजिमा 1993 : 284n, 351)। पाँच मूलक्लेश टीका के अनुसार अविद्या से उत्पन्न होते हैं (ताजिमा, पृ. 285n 351) जब संतोषी जनों के 160 प्रकार के क्लेशयुक्त मन पारगामी बन जाते हैं तो भारी पुण्य उत्पन्न होता है।" (यामामोतो 1990:5)। वेमैन (1992 : 43) कहता है "व्यक्ति 160 पार्थिव मनो के तीन कल्पों (eons) को परापार्थिव मन जगाकर पार करता है।" उन्होंने 'कल्प' का अनुवाद eons (समय का माप) किया है। कल्प का अर्थ समय की अवधि नहीं है। बल्कि यह भ्रातिकारी जुड़ाव वैराग्यपरक बौद्धधर्म में होता है। (देखें यामामोतो 1990 : 9; हौज 452)। इसका सही अनुवाद होगा यदि कोई व्यक्ति तीन भ्रातिकारी *लौकिक कल्पों* को पार कर जाए तो वह परापार्थिव हृदय (लोकोत्तर चित्त) उत्पन्न होता है (ताजिमा, पृ. 264, n352 व 353, पृ. 285)।

प्रतीत यही होता है कि प्रच्छन्न भित्तिचित्र कर्म विभंग और उससे जुड़े हुए ग्रंथों की अपेक्षा वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र को उससे कहीं ज्यादा प्रतिनिधित करते हैं। अथवा वे दो पृथक विचारों के सम्मिश्रण के प्रतिनिधि हैं जिन्हें एक जगह साथ लाकर एक संग्रहित दृश्यगत सम्पूर्ण बना दिया गया है।

इन्दोनीसिया का प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ साड ह्याड कूमहायानिकन (एस एच के) वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र से ही आरम्भ होता है। वैरोचनतन्त्र की पन्द्रह पंक्तियाँ एस एच के में भी मिलती हैं। (लोकेशचन्द्र, 1995 : 4.295 पृ. पर)।

चीनी-जापानी मन्त्रयान (जापानी में शिंगोन) की स्थापना शुभाकर सिंह (635-735) वज्रबोधि (671-741) और अमोघवज्र (705-774) ने की थी। वज्रबोधि भारत से श्रीलंका और फिर वहाँ से श्रीविजय गया। वहाँ उसकी भेंट अमोघवज्र से हुई जो उसका शिष्य बन गया। श्रीविजय से 719 में वह चीन पहुँचा। शिंगोन के प्रधान ग्रन्थ हैं, *वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र, सर्व तथागत तत्त्व संग्रह, जापसूत्र* और *न्यायसूत्र* जापसूत्र और न्यायसूत्र की पंक्तियाँ *साड ह्याड कामहायानिकन* में भी उद्धृत की गई हैं। प्रतीत होता है कि इन ग्रंथों के मूल संस्कृत ग्रंथ *वज्रबोधि* इन्दोनीसिया से ही लिए गए थे। एस एच के मन्त्रयान के ग्रन्थों का संग्रह है। तथा इसमें एक संक्षिप्त साड ह्याड नागबायु सूत्र, संस्कृत में वज्रधातु प्रणाली के पाँच तथागतों को समर्पित किया हुआ, सम्मिलित है। कल्पबुद्ध के प्राचीन जावाई पाठ में भी पाँच तथागतों के विशिष्ट गुण

बताए हुए हैं। (एफ. डी. के. बौश, *सेलेक्टेड स्टडीज इन इन्दोनीसियन आर्कायोलॉजी*, 1961 : 131-133)। शीर्षक में आया नागबायु नागाहवय का जो नागार्जुन का ही अन्य नाम है, भ्रष्ट रूप है। वह शिंगोन के आठ गुरुओं या पुरखाओं में से प्रथम गुरु है : नागार्जुन, उनका शिष्य नागबोधि, शुभांकर सिंह (637-735), वज्रबोधि (671-741), अमोघवज्र (705-774, ईत्सिंग (683-727), हुई-कुओ (746-805), कोबो दार्याश (774-835)। शिंगोन का इन्दोनीसियाई ग्रंथों से निकट सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। इन्दोनीसिया जरूर मन्त्रयान का बड़ा केन्द्र रहा होगा। जहाँ उसकी सक्रिय शैक्षिक परम्परा और उसके साथ वास्तुशिल्पीय महत्ता की भव्यता विद्यमान थी। अमोघवज्र ने अपने छह प्रधान शिष्यों को, जिनमें सिल्ला का हुई चा'ओ (कोरिया) भी एक शिष्य था, *वज्र धातु* पढ़ाया। हुई-चाओ वज्रबोधि का भी शिष्य रह चुका था। अमोघवज्र के कई विदेशी शिष्य भी थे जैसे जावा का पिएन हुंग (चाऊ यि-तलियाड, *तंत्रिज्म इन चायना*, हार्वर्ड वर्ल्ड ऑफ एशियाटिक स्टडीज, 1945; 8.329)। *जापसूत्र* भी शिंगोन सम्प्रदाय का बड़ा ग्रन्थ था जिसमें मण्डलों की पूजा विधियों, अभिषेक करने और होम का विवेचन था। केवल इसी ग्रन्थ में अभिषेक विधि को विस्तार पूर्वक बताया गया है। (चाऊ चि, पृ. 281)। इसका अनुवाद वज्रबोधि ने किया है जिसने उसका अध्ययन नागार्जुन के शिष्य नागबोधि के अधीन रहकर किया था। एस एच के में बार-बार इसका उल्लेख किया गया है। न्यायसूत्र के वज्रसत्त्वमंडल से सम्बन्धित प्रारंभिक दसवीं शती की छह प्रतिमाएँ 1976 में सुरोकोलो में मिली थीं। (हयान फोन्तेन, *दि स्कल्पचर ऑफ इन्दोनीसिया*, 1990 : 224-226)। न्याय सूत्र का जापान में तीन बार, प्रातः, मध्याह्न में और सायंकाल, पाठ किया जाता है। शिंगोन मन्दिरों में यह प्रतिदिन चलने वाला पाठ है। प्रतीत होता है कि इन्दोनीसिया की मन्त्रयान प्रथाओं ने पूर्व एशिया में हुए विकास को प्रभावित किया था जैसा कि बोरोबुदुर और एस एच के में मिलते निकट साम्यों तथा शिंगोन के सजीव नामों से पता चलता है। मन्त्रयान में शृंगारिक तत्त्व नहीं थे इसी से बोरोबुदुर का मूर्तिनिर्माण अनलंकृत है। बोरोबुदुर मन्त्रयान का पावन स्थल है जिसमें तीन स्तरों पर वैरोचन बिना अपनी किसी मूर्ति के उपस्थित है : प्रच्छन्न आधार में, जालीदार स्तूप में तथा पावनस्थली की समग्र रूपाकृति में।

9. दुर्गति परिशोधन वैरोचन जालीदार स्तूप की 72 बुद्ध मूर्तियाँ 72 संस्कृत धर्मों को दूर करने की प्रतिनिधि हैं। ललित विस्तर का एक श्लोक, 195.12 कहता है 'दृष्टि जालम उद्धति संस्कृतातः' अर्थात् जिन्होंने संस्कारगत मिथ्या-दृष्टि जाल से उद्धार कर लिया है। 72 की संख्या और जाल जालीदार 72 स्तूपों से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। *संस्कृत* शब्द समाधि आदि के लिए अधिकचरे शिक्षक (या गुरु) रुद्रक द्वारा *ललितविस्तर* 244.2 में प्रयुक्त किया गया है : संस्कृतानो साश्रवानां... ध्यान-समाधि-सम्पत्तिनाम् (एडगर्टेन, 1953 : 543a)। डब्लू. ई. त्सुराह व एल. होड्स, *ए डिक्शनरी ऑफ चायनीज बुद्धिस्ट टर्म्स* (1937 : 421a) संस्कृत के लिए प्रयुक्त

चीनी पारिभाषिक शब्द का अर्थ "सक्रिय, घटनात्मक, कारणतन बना हुआ, जन्म लेने के लक्षणों वाला, अस्तित्व, परिवर्तन और मृत्यु" करते हैं। इन घटनात्मक स्थितियों को न आने देना ही बोधिसत्व मार्ग है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि गुणधर्म ने यह विचार ग्रहण किया। वह *ललित विस्तर* में गहरे उतरा हुआ था जिसने उसकी मनोकल्पना और उसके दृश्यगत प्रतिनिधायन पर गहरा प्रभाव डाला था। जालीदार स्तूप में स्थापित किए हुए बुद्ध धर्मचक्र (प्रवर्तन) मुद्रा में हैं जो सभी दुर्गति नियतियों को दूर करने के लिए सर्वदुर्गति परिशोधन तंत्र के महावैरोचन को मिली हुई है (*निष्पन्नयोगावली*) मंडल 22, पृ. 66 और उसके आगे के पृष्ठों पर)। बोरोबुदुर में निर्वाण का कोई चित्रण न किया जाना (फोन्तेन, पृ. 78) इस बात को पुष्ट करता है कि *ललित विस्तर* जो भगवान बुद्ध के निर्वाण के बजाय भगवान बुद्ध की बोधिप्राप्ति पर समाप्त हो जाता है, इस पावनस्थली का मार्गदर्शक ग्रंथ था। सुमेरु जिसके शिखर पर स्तूप बनाया हुआ है, चारों दिशाओं में चार बुद्धों की मुद्रा और कुल बुद्धों की 504 संख्या, सभी का वज्रधातु से सम्बन्ध है।

10. वज्रधातु वैरोचन पावन बनाए स्थल में सुमेरु पर्वत पर बने कूटागार में निष्पन्न योगावली के अनुसार (पृ. 44., वज्रधातु मण्डले वज्रपजरादरे सुमेरुपरि कूटागारं तस्य मध्ये सिंहेपरि...भगवान वैरोचनः) आसीन है। बोरोबुदुर का वास्तुशिल्प चार दिशाओं में खुलते चार प्रवेशद्वारों वाला जीनेदार बनाए सुमेरु का है। शकाब्द 746 (दामाइस के अनुसार 26 मई 824 ई.) का करंगतेणह अभिलेख पंक्ति 2 में इसे *उत्तुंग शैलस्थ सूरु* तथा पंक्ति 23 में *मेरु* बताता है। मण्डल की मूर्तियाँ *सुरोकोलो* गाँव से मिली हैं। *सुरोकोलो* का अर्थ देवताओं का पर्वत है। यह सुमेरु का पर्याय है।

बोरोबुदुर के शिखर पर स्तूप बना हुआ था, जो उस समय, जब बोरोबुदुर की खोज हुई, खुला हुआ था। यह इतना खुला था कि व्यक्ति कूटागार में पूजा-अर्चा करने के लिए प्रविष्ट हो सकता था। उदित होते सूर्य की प्रथम रश्मियाँ निश्चय ही खुले कूटागार में स्थापित किए वैरोचन का स्पर्श करती होंगी। दुर्भाग्य से वॉन एर्प द्वारा इसके पुनर्निर्माण कराते, और बाद में युनेस्को द्वारा इसे बन्द करा दिया गया। प्रो. रोलफ ए. स्टाइन ने स्पष्टतः संकेत किया है कि खुला स्तूप वज्रधातु मंडल का प्रतिनिधि था। (*लैन्युवार द्यु कॉलेज द फ्रांस* 76-530)। सहस्रबुद्ध दिशाबुद्ध हैं जो जापान में बने वज्रधातु मण्डलों में पूर्व बुद्ध, दक्षिण बुद्ध, पश्चिम बुद्ध और उत्तर बुद्ध रूप में भली-भाँति ज्ञात है।

त्रिधातु (काम, रूप और अरुप्य) अथवा तीन लोकों की बत्तीस ध्यान स्थितियाँ होती हैं। इनका ब्योरा मेरे *कल्चरल होराइजंस ऑफ इंडिया* 7 : 235-37 में दिया हुआ है। वे हैं :

- 1-4 चार दुर्गतियाँ
- 5-11 सात सुगतियाँ

12-28 रूपधातु : प्रथम ध्यान (12-14), द्वितीय ध्यान (15-17)

तृतीय ध्यान (18-20), चतुर्थ ध्यान (21-28)

29-32 अरूप्यधातुपाँचवें से आठवाँ ध्यान।

पहली ग्यारह स्थितियाँ ध्यान अवस्थाओं की आन्तरिक प्रकृतियाँ हैं जिन्हें पहले कण्डिका 7 में समझाया जा चुका है। त्रिधातु को व्यंग्य स्वरूप ही नहीं लिया जाता और बोरोबुदुर में इस तरह उसे लिया भी नहीं गया है, जैसे अब तक उसकी व्याख्या की जाती रही है। *वैरोचनाभिसंबोधि तन्त्र* 2, 23 का वचन है, “मेरा धर्म पूर्णतः प्रबुद्ध है। इसका उदय आकाश में होता है।” आकाश ही ध्यान करने का स्थान है और त्रिधातु का मनोदर्शन ध्यान में ही किया गया था।

11. शैलेन्द्र सम्राट समरतुंग के 746 शकाब्द (824 ई.) ड कयुमबुडन पाषाण अभिलेख में बोरोबुदुर की प्रधान प्रतिमा को ‘उत्तुंग शैलस्थ शूरः’ कहा गया है। सम्राट समर्पित मन से इस प्रतिमा का नमन करते हैं। शूर का संकेत शाक्यमुनि की ओर नहीं शाक्य सिंह रूप में वैरोचन की ओर है। निष्पन्न योगावली में (पृ. 66) वैरोचन को शाक्यसिंह : *श्री शाक्यसिंहो भगवान महावैरोचनः* कहा गया है। उत्तुंगशैला का संकेत सुमेरु रूप में बोरोबुदुर की ओर है। उत्तुंग या तुंग का उल्लेख इन्दोनीसिया के राजनामों में मिलता है तथा बोरोबुदुर का उच्च शिखर वाला सुमेरु शैलेन्द्र सम्राटों की शक्ति और वैभव है। अभिलेख की 15वीं पंक्ति में मूर्तियों से भरे हुए मेरु (समाक्रान्त मूर्तिश्च मेरुः) का उल्लेख है। *प्रणमति* का लट् लकार (वर्तमान काल) बताता है कि सम्राट समरतुंग ही इसके प्रदाता थे। अभिलेख में सम्राट के भारी शौर्य (पंक्ति 7) का उल्लेख मिलता है जिसने अनेक राजाओं को परास्त किया था। उनकी राज गुणों और विशेषताओं वाली, नारी चारुता और करुणा से युक्त, बहुत प्यारी पुत्री थी। वह सौंदर्य की प्रतिमा ही थी। और उसका नाम प्रमोदवर्द्धिनी उसके असाधारण गुणों का सूचक था कि वह सभी पर सदा प्रसन्नता बिखेरती थी। उसने जिनालया (पंक्ति 8) मन्दिर (पंक्ति 11) जिन मंदिर (पंक्ति 13) का निर्माण इस गाँव में करवाया और उसमें अपने स्वर्गीय पति (श्री घननाथ) और श्वसुर (आर्य पंक्ति 11) की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराईं। महिमा में यह मन्दिर शाक्यमुनि बुद्ध को अर्पित किए गए राजा बिम्बसार द्वारा निर्मित कराए विहार वेणुवन उपहार का प्रतिस्पर्धी था। भगवान बुद्ध के कार्यकलापों का यह महान केन्द्र था। अन्तिम पंक्ति 15 में प्रार्थना की गई है कि यह विहार तब तक यथावत बना रहे जब तक मेरु पर देवताओं का निवास रहे। मन्दिर का निर्माण राजकुमारी के स्वर्गीय पति और श्वसुर की स्मृति में तथा विहार की स्थापना उत्तम धर्म को फैलाने के लिए कराई गई थी। ये दोनों कार्य दो संभारों के प्रतिनिधि थे। मंदिर धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा पुण्य संचय करने के लिए (पुण्य संभार) तथा विहार तरुण और बुद्ध भिक्षुओं (पंक्ति 13) द्वारा धर्म का ज्ञान प्रसार करने के लिए (ज्ञान संभार) थे। पंक्ति उन वस्तुतः इन दो संभारों को प्रोत्साहन देने

(महाज्ञान-पुण्य-प्रसूति) की ओर संकेत है। मंदिर और विहार का निर्माण *भक्ति* (पंक्ति 3) और प्रेम (*प्रीत्यो*) के फलस्वरूप कराया गया। ताकि उत्तम धर्म सांसारिक दुःखों (पंक्ति 2) को दूर करने की प्रधान औषधि बन सके। अगली पंक्ति 3 में संसार को पीड़ित करनेवाले अनन्त दुःखों की बात दुहराई गई है। उससे अगली पंक्ति 4 में उस महान करुणा (करुणां...गरीयसीम्) का कथन है जो उन दुःखी प्राणियों को प्राप्त होगी जो बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करेंगे। अभिलेख यह सूचित करता प्रतीत होता है कि एक नया मन्दिर और असाधारण विद्वानों वाला एक विहार निष्ठावान भक्तों की सहायता करने और उसके साथ-साथ उच्च ज्ञान को समर्पित विद्वानों की भी सहायतार्थ स्थापित किए गए थे। इन्हें बोरोबुदुर के पावन परिसर में स्थापित किया गया था ताकि राजकुमारी को हुई अपनी वैयक्तिक हानि में कुछ सान्त्वना मिल सके और उसके साथ-साथ यह उत्कृष्ट ज्ञानविज्ञान का केन्द्र भी बन जाए।

12. बोरोबुदुर इन्दोनीसिया के जाति-राष्ट्र का प्रतीक है गण्डव्यूह के भित्तिचित्रों की बहुलता और वैरोचन अर्थात् महासूर्य की तीन स्तरों पर स्पष्ट इंगिति हमें इसकी विस्मयकारी तुलना जापान के सम्राट शोमु द्वारा 752 में रोशना (संस्कृत की रोचन) विशालमूर्ति अर्थात् नारा दायबुत्सु से करने को आमन्त्रित करती है। सम्राट शोमु ने 743 में शक्ति के प्रति राष्ट्र की जागरूकता को संगठित करने के अपने प्रयत्न में “राष्ट्र का नियन्त्रण करने वाले प्रधान के रूप में सम्राट को उपयुक्त प्रतीक बनाने को” तोड़ई जी विहार में 16 मीटर ऊँची रोचन की विशालमूर्ति बनाने का आदेश-पत्र जारी किया। (कोबांयाशी 1975:22)। ऐसा जनता और सम्राट के मध्य समरसता लाने को राष्ट्र की प्रभुसत्ता को गहनतर आध्यात्मिक स्तरों पर मजबूत बनाने के लिए किया गया था : “भीतर से सन्त, बाहर से सम्राट।” यह एक महान राष्ट्र मंदिर था।

रोचन गण्डव्यूह (443-9) के धरमदेव अथवा *अभ्युच्च देव* हैं जिनकी विशालमूर्तियाँ किसी भी मन्दिर की अभिभूत करनेवाली दृश्य उपस्थिति होती हैं। उत्तरी वेई वंश ने 386 से 550 तक चीन पर शासन किया। वे ‘पाँच बर्बरो’ में से एक तोपा कबीले के थे। (याड ह्सुआन चिह, *ए रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट मोनास्ट्रीज इन लो-याड*, 1984 : 113 टि 288)।

उन्होंने 440 में लोयाड की प्राचीन राजधानी पर अधिकार कर लिया। पूर्व एशिया का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य बनाकर पूरे उत्तरी चीन पर शासन करते रहे। उन्होंने भारत तक से अधीनता राशि लाते शिष्टमंडलों को स्वीकार किया। (वोल्फ्राम एवेरहार्ड, *ए हिस्ट्री ऑफ चायना*, 1955:152)। वेई सम्राटों ने अपना शासन देश पर वैध बनाने के लिए राजधानी के निकट यून-काड गुफाएँ उत्खनित कराने और पहले पाँच सम्राटों : ताई-त्सु 386-408, ताई-त्सुड 409-423, शिह-त्सु 424-452, कुड-त्सुड, काव-त्सुड 452-465 के लाभार्थ पाँच गुहाओं में रोचन की विशाल मूर्तियाँ बनाने का राजादेश तान-याव को दिया। मूर्तियों को सम्राटों के शरीर-समानुपात में

बनाया जाता था। यून-काङ की मूर्तियाँ एक नई वस्तु थीं जिससे चीनी विद्वान आश्चर्यचकित रह गए और अत्यधिक विकसित संस्कृति लाने के रूप में उत्तरी वेई वंश को ठोस वैधता मिल गई।

यून-काङ की विशालमूर्तियाँ मूलधारणा और उसके क्रियान्वयन में बामियान का स्मरण दिलाती हैं। केकय जिसने गुफाओं की आयोजना बनाने में तान याव से सहकार किया, उत्तर पश्चिम (भारत) का था और उसने बामियान की विशालमूर्तियों के जगमगाते विवरण अवश्य अपने ध्यान में रखे होंगे, जिससे तान याव को चीन की भूमि पर उन्हें पुनःसर्जित करने की प्रेरणा मिली। और जो उसके नामानुरूप गौतम की (तान) महिमा (याव) भी था। बामियान की विशाल मूर्तियाँ गण्डव्यूह के अभ्युच्च देव की प्रतिनिधि है जैसा मैंने अपने प्रबन्ध *बुद्धिस्ट कोलोसी एण्ड दि अवतंसक सूत्राज (क्लवरल होराइजंस ऑफ इंडिया 6.32-51)* में दिखाया है।

सम्राज्ञी वू त्से-तियेन ने अवतंसक सूत्रों का नए सिरे से अनुवाद 695-699 में शिक्षानंद से कराया। एक विशेष राजदूत संस्कृत ग्रंथ लाने खेतन भेजा गया। तथा अनुवाद में सम्राज्ञी ने भी योग दिया। ऐसा कन्फूसियस की यह मान्यता हटाने के लिए किया गया कि कोई महिला सम्राज्ञी नहीं बन सकती। 699 में अवतंसक के उन्हीं के लिखे आमुख में उन्होंने भगवान बुद्ध की भविष्यवाणियाँ प्राप्त किए जाने पर प्रसन्नता प्रकट की है। अवतंसक सूत्र का अनुवाद समाप्त हो जाने पर अनुवादकों द्वारा 5 नवम्बर 699 को प्रस्तुत किए गए स्मरण लेख में वू चाव चक्रवर्ती के विचार और बोधिसत्व धारणाओं को सम्पुष्ट किया गया। स्मरण लेख के हस्ताक्षर कर्ताओं में ई-त्सिड, जो थोड़ा समय हुए ही भारत से चीन में वापस आया था, बोधिरुचि और कश्मीर से आये क्षत्रिय जाति के भिक्षु चिन्तामणि सम्मिलित थे। क्षत्रिय जाति का इसमें विशेष उल्लेख किया जाना कन्फूसियाई मन्दारिनों से तुल्यता दिखाने को है।

कोरिया की सोक्कुरम गुफा भी अवतंसक मन्दिर है। इसे क्योड डॉक के शासनकाल में निर्मित किया गया जिसने राजादेश से अवतंसक को राज्य धर्मग्रंथ घोषित किया। कोरिया और बाद में जापान के शासक वर्ग ने अवतंसक और राज्य के बीच एक समतुल्यता देखी। सोक्कुरम पूर्वी सागर का प्रतिरक्षण करता है।

इसी प्रकार, शैलेन्द्र सम्राटों के लिए बोरोबुदुर भी (i) निष्ठा या कर्मकाण्ड कार्य (ii) ध्यान के लिए महान पर्वत केन्द्र (iii) विद्वत्ता की असाधारण स्थली तथा (iv) मूल्य प्रणाली के रक्षक रूप में सम्राट के व्यक्तित्व में राज्य का पावनीकरण और वैधकरण उपाय रहा होगा। अवतंसक का प्रच्छन्न आधार जालीदार स्तूपों और शिखर पर बने खुले स्तूप में वैरोचन की तीनों अभिव्यक्तियों के साथ सम्मिश्रण में बोरोबुदुर के राजनैतिक आयामों को देखा जा सकता है। रोचन और वैरोचन दोनों का अर्थ सूर्य है। धर्म स्थापकों में बुद्ध ही एक मात्र ऐसे हैं जिनमें राज रक्त है। अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित 1.1 के पहले श्लोक में ही कहा है, “ऐश्वकाकुओं के वंश में,

शुद्धोधन नाम का अपराजेय शाक्यों का एक राजा था, जो शक्ति में इश्वकाकु के समान था” (ई. एच. जौन्स्टन, *दि बुद्धचरित*, भाग II, पृ. 1)। इस प्रकार बुद्ध ऐश्वकाकुओं के सूर्यवंशी ठहरते हैं जिसके सर्वाधिक प्रसिद्ध वंशज रामायण के श्रीराम हैं।

शाक्यमुनि अमिताभ बने। उनका वाहन मयूर है। ईरान का मयूर सिंहासन राज्य के साथ अमिताभ का सम्बन्ध होने का स्मरण कराता है।

बोरोबुदुर के प्रच्छन्न आधार में वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र के 60 और 160 चित्र उसके योगपट्टों से बँधे 60 व्यक्तियों सहित 160 भित्तिचित्रों में सम्मिलित किए हुए हैं। जालीदार स्तूपों में दुर्गीर्ति परिशोधन वैरोचन की धर्मचक्र मुद्रा वाली 72 मूर्तियाँ हैं। सम्पूर्ण स्मारक में वज्रधातु वैरोचन के विविध तत्त्व मिलते हैं। वैरोचन अपनी सर्वविद् अभिव्यक्ति में चक्र लिए हुए है। (क्लार्क, 1937 : 2,114)। चक्र चक्रवर्ती (विश्व शासक) का प्रतिनिधित्व है। वज्रधातु वैरोचन का अन्य नाम एकाक्षर चक्रवर्तित है। अमोघवज्र (705-774) ने एकाक्षर उष्णीश चक्रवर्ती के आह्वान की मैनुअल लिखी। 12वीं शती की 76.5 सेमी. ऊँची बहुवर्णी काष्ठ प्रतिमा चुसोवी विहार में देखी जा सकती है। (फुकुयामा, 1976: 28 फलक, 22 रंगीन)। हम विशेष रूप से यह जान लें कि अमोघवज्र जावा में रहा था : विस्तृत बौद्ध विद्वान शेष जगत से निरन्तर अन्तःक्रिया करते रहते थे और मन्त्रयान के सर्वाधिक भव्य स्मारकों वाला जावा उस समय सबसे ऊपर अधिष्ठित था। सर्वविद् कर्मकाण्ड 14वीं शती तक प्रचलित रहे। नागरकृतागम में 1362 में हुए राजपत्नी के अन्तिम श्राद्ध समारोह का वर्णन दिया गया है जो कहता है (64.3) कि सर्वज्ञ की पूजा तन्त्रों और मंडल निर्माण में निष्णात बौद्ध भिक्षुओं ने सम्पादित की थी। इस वाक्य का सही-सही अभिप्राय थि. वीगोद अथवा जोइटमुल्डर किसी की समझ में नहीं आया है (ओ. जा. इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 1700 : सर्वज्ञपूजा)। सर्वज्ञ सर्वविद् वैरोचन का पर्याय है जो चक्रवर्ती का चक्र धारण किए हुए है। शैलेन्द्र सम्राट समरतुंग के कयूमवूडन अभिलेख में उत्तुंग शैलस्थ शूर की चर्चा है जो बोरोबुदुर के ऊँचे शैल पर आसीन शूर (= वैरोचन) की ओर संकेत करता है। इसमें शैल शब्द अत्यधिक महत्त्व का है क्योंकि यह शैलेन्द्रों की ओर संकेत करता है। बोरोबुदुर का ऊँचा शैल शैलेन्द्रों के विस्तृत साम्राज्य और राष्ट्रीय स्मारक का प्रतीक था जो उनकी राजनैतिक शक्ति, आर्थिक समृद्धि और 8-9 वीं शताब्दियों में इन्दोनीसी राज्य की बौद्धिक महिमा का प्रतिनिधि था। हमें गूगे राज्य के भी ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने 10-11वीं शताब्दी में ‘राज्यदीप’ के रूप में तावो विहार निर्मित कराया। तावो के प्रधान मन्दिर में ललितविस्तर और गण्डव्यूह के चित्र और वज्रधातु मण्डल की तीन आयामों वाली मूर्तियाँ बनाई हुई हैं।

गण्डव्यूह और मन्त्रयान में सदा गहरा निकट सम्बन्ध रहा है। जब कोबो दायशी मन्त्रयान शिक्षाओं का अपना अध्ययन और व्यवहार पूरा करने के बाद जापान लौटा तो उसके भारतीय गुरु वज्र ने उसे संस्कृत पाण्डुलिपियाँ, अवतंसक सूत्र

(गण्डव्यूह), सतपारमिता सूत्र के चीनी अनुवाद तथा अनेक संस्कृत पाण्डुलिपियाँ जनकल्याण के लिए दी थी। (हाकेदा, 1972 : 149)। अवतंसक के बुद्धभद्र द्वारा 422 ई. में किए चीनी अनुवाद का रोचन शिक्षानन्द द्वारा 699 ई. पूरा किए चीनी संस्करण में वैरोचन बन गया है। रोचन शब्द 798 में किए गए प्रज्ञ के चीनी अनुवाद में बार-बार आया है।

अवतंसक सूत्रों की रचना उत्तरपश्चिमी भारत में की गई और उसका प्राचीनतम चीनी अनुवाद रम्यक सूत्र (चीनी में लोमो चिया चिड) है, जिसे आर्यस्थिर ने 388-407 में किया था। यही गण्डव्यूह है। इसे यह नाम इसलिए मिला क्योंकि रम्यक में किया गया था जो आज की अफगानिस्तान की लमघन उपत्यका है। तोखारी जन इस श्रेत्र में विद्यमान थे। तोखारी इटैलो-केल्टिक भाषा है। राजशक्ति के इसके चित्र स्वाभाविक है कि पश्चिमी शास्त्रीय प्रतिरूपों से प्रभावित थे। सूर्य देव हेलिओस की सबसे ज्यादा प्रसिद्ध विशाल, 105 फुट ऊँची कांस्य मूर्ति पराजित शत्रु के हथियारों को गलाकर मिली धातु से बनाई गई थी। 653 ई. तक यह रोड्स बन्दरगाह के प्रवेश स्थल पर खड़ी हुई रही परन्तु उसके बाद अरबों ने इसे विनष्ट कर डाला। इसकी टूटी-फूटी धातु सामग्री 900 ऊँटों के लदान बराबर हुई। बामियान की बृहत्तर विशालमूर्ति, 175 फुट ऊँची, ऐसी सभी मूर्तियों से बड़ी और मानवाकार से तीसगुनी (5.83×30=175 फुट) थी। इस प्रकार गण्डव्यूह का रोचन और वैरोचन जो चीनी-जापानी अनुवाद में दायनिशी 'महतसूर्य' बन गए सूर्यवंश, इन्दोनीसिया में शैलेन्द्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

निष्कर्ष

- हमने गुणधर्म को वह व्यक्ति माना है जिसने अनेक बौद्ध ग्रंथों की समरसता में सुमेरु और बोराबुदुर के भित्तिचित्रों की परिकल्पना की और उन्हें निर्मित प्रदान की।
- इसमें वह बौद्धों की बहुस्तरीय विकास परंपरा का अनुसरण कर रहा है जिसका समाहार इन सूत्रों में किया गया है।
- प्रच्छन्न आधार अधोस्तर है क्योंकि कर्म ही सभी आध्यात्मिक उपलब्धियों की नींव है
 - सामान्य स्तर भिक्षु संघ में आए हुए लोगों को मिलते निर्वाण की जगह गृहपतियों को सुकर्म करके स्वर्ग में ज्यादा अच्छा जीवन प्राप्त होने की आशा प्रस्तुत करता है। देवताओं का पूजा अर्चा की जगह नैतिक आचरणशस्त्र ने ले ली है।
 - दूसरा स्तर बोधि तक पहुँचाने वाली सीढ़ियाँ हैं।
- प्रच्छन्न आधार के लिए गुणधर्म का प्रधान स्रोत कर्म विभंग का वह पाठ

रहा है जो अब केवल गौतम धर्मप्रज्ञ द्वारा किए चीनी अनुवाद में ही उपलब्ध है। इसे उन्होंने अन्य ग्रन्थों से सम्पूरित किया है।

- अब तक सम्पूर्ण बोरोबुदुर की पहिचान अभिधर्म की त्रिधातु प्रणाली के अनुसार ही की गई है। यह बोराबुदुर के विभिन्न अंगों के साथ मेल नहीं खाती।
- गुणधर्म ने ललित विस्तर के चार संभारवाली चतुष्क प्रणाली का अनुसरण किया है। प्रच्छन्न आधार आचारशास्त्र का प्रतिनिधि है जिससे सुकर्म उदित होते हैं। यह पुण्य संभार है। जातकों और भगवान बुद्ध के जीवन के भित्तिचित्र बोधि तक ले जाने वाली सीढ़ियाँ हैं। ये ज्ञान संभार है। गण्डव्यूह के 54 कल्याणमित्र शमथ संभार के आयाम हैं। सुमेरु या वास्तुकर्म संरचनाओं तथा बुद्धों की 504 मूर्तियों का सम्बन्ध वज्रधातु वैरोचन से है। ये विदरुणा संभार है।

संदर्भ साहित्य

वाल्टर युजीन क्लार्क	टू लामाइस्टिक पैल्वियोंस, कैम्बिन, मासा. (हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस)।
इयान फोन्तेन	दि लॉ ऑफ काज एण्ड इफेक्ट इन एशियंट जावा, आम्स्टर्डम, 1981
तोशियो फूकूयामा	हेइअन टेम्पल्स : ब्योदो-इन एण्ड चुसोन जी, तोक्यो (हेइबोशा), न्यूयार्क (वेदरहिल)
योशितो एस. हकेदा	कुकई : मेजर वर्क्स, न्यूयार्क (कोलंबिया युनिवर्सिटी प्रेस)
स्टीफन हौज	दि महावैरोचन-अभिसम्बोधि-तन्त्र, न्यूयार्क (रूटलिज कर्जन)
कोरियन त्रिपिटक, लीविस आर. लंकास्टर	दि कोरियन बुद्धिस्ट कैनन : ए. डेस्क्रिप्टिव कैटेलाग, बर्कले, 1919, युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस
सिल्वॉ लेवी	महाकर्म विभंग कर्मविभंगोपदेश, पेरिस, 1932', लाइब्रेरी एनेलिसिस
एलिलिया मात्सुनाग	दि बुद्धिस्ट फिलासोफी ऑफ एसीमिलेशन: हिस्टारिकल डेवलेपमेंट ऑफ दि होंजी सुहजाकू थ्योरी, तोक्यो, 1969, चार्ल्स ई. रटल कं.
बुनयिऊ नांगियो	ए कैटेलाग ऑफ दि चाइनीज ट्रांसलेशन ऑफ बुद्धिस्ट त्रिपिटक, आक्सफोर्ड, 1883, क्लेरेंडन

डी. टी. सुजुकी	प्रेस स्टडीज इन दि लंकावतार सूत्र, लन्दन, 1930, जार्ज रूटलिज एण्ड संस लि.
तायशो	एडिशन ऑफ दि चाइनीज त्रिपिटक संपा. ताकाकुलू जुनजीरो एण्ड बतनाने कालग्योकु, 1924
एलेक्स वेमैन	दि एन्लाइटेनमेंट ऑफ वैरोचन, नई दिल्ली (मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा. लि.)
चिक्वो यामामोतो	महावैरोचन सूत्र, नई दिल्ली (आदित्य प्रकाशन)

प्राप्ति-स्वीकार

पिछले अंकों में सूचीबद्ध पुस्तकों/पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राप्त नयी पुस्तकें/पत्रिकाएँ :

साक्षात्कार 344-345; अगस्त सितम्बर 2008, संपादक: हरि भटनागर; साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद का मासिक प्रकाशन; प्रकाशक : निदेशक / प्रधान सम्पादक, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, संस्कृति भवन, बाण गंगा, भोपाल-3. पृष्ठ: 272, मूल्य: 30 रुपये।

हरित रहे वसुंधरा (गीति नाट्य); किशोरी लाल व्यास 'नीलकंठ'; इंदूर हिंदी समिति, निजामाबाद, प्रथम संस्करण: 2008, प्रकाशक: डॉ. किशोरी लाल व्यास, एफ-1, रत्ना रसिडेंसी, महेश्वरी नगर, हब्शीगुडा, हैदराबाद-500007; पृष्ठ: 30, मूल्य: 100 रुपये।

दिव्यालोक अंक-10, वर्ष-2008; संपादक: जगदीश किंजल्क; प्रकाशक: राजो किंजल्क, साहित्य सदन, द्वारकापुरी, कोटरा रोड, पी. एण्ड टी. चौराहे के पास, भोपाल-462003 (म.प्र.), पृष्ठ: 80, मूल्य: 100 रुपये।

तन्त्र या आगम और भाषा

राममूर्ति त्रिपाठी*

तन्त्र या आगम में भाषा से सम्बद्ध उस विवाद के लिए कोई स्थान नहीं है कि मानव ने व्यवहार सौकरम के लिए वर्णों या उससे घटित रूप में भाषा की कल्पना की अथवा उसका कोई पदार्थ विज्ञान-सम्मत स्वरूप है। यहाँ तो माना जाता है कि मनुष्य की शरीर नामक संस्था में जन्मतः वर्णों की सूक्ष्म संस्थिति रहती है तथा इन वर्णों या आहत ध्वनियों के समाहारक अनाहत नाद अथवा प्रणव का सतत घोष होता रहता है। साथ ही यह कि ये वर्ण उसी एकाक्षर रवि रूप अव्याकृत वाक् से क्षरित होते रहते हैं। वैसे तो यह भी कहा गया है कि इससे भी परे प्रणव रूप पर शब्दात्मक कुण्डलिनी या महाशक्ति की घनीभूत अवस्था है जो सृष्टि का मूल है। अर्थात् एक तो इसकी चर्चा स्रष्ट्री रूप में है और दूसरे ऐहिक तथा आयुष्मिक कामनाओं की सिद्धि के लिए वर्ण-घटित मन्त्रों के रूप में। एक तरफ कहा गया 'वागेव विश्वाभुवनानि जज्ञे' अर्थात् यह वाक्-तत्त्व है जिससे सारे भुवन जन्म लेते हैं और दूसरी तरफ माना गया है कि मनन द्वारा त्राण का माध्यम मन्त्र है।

आगम में ही नहीं, उससे जुड़े हुए निगमात्मक ऋग्वेद में से ही वाग्वापार को सृष्टि के पर्याय के रूप में देखा जाना प्रारम्भ हो गया। वाक् के ही तीन स्तरों के रूप में द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी की कल्पना की गई और वाक् को ही देवताओं की धारिका तथा प्रेरिका शक्ति के रूप में देखा गया। इसी वाक् की भीतरी खोज ही मन्त्र साधना का पर्याय बनी। इस खोज की परिणति होती है उस वाक् में जो हाथ में गही नहीं जाती, पर स्वयं प्रस्तुत होकर रहस्य उन्मीलित कर देती है। इस प्रकार प्रकृत में तन्त्र या आगमगत भाषा का चिन्तन उक्त दो ही रूपों में प्रतिश्रुत है।

पहले इसके स्रष्ट्री रूप पर विचार कर लें। निगमागम में सर्वत्र माना गया है कि स्रष्ट्री शब्द प्रणव है। प्रश्न यह होता है कि यह शब्द कौन-सा है? श्रोत्रग्राह्य शब्द तो स्वयं अपनी सत्ता के लिए अनेक उपादान एवं निमित्तों की अपेक्षा करता है अतः यह शब्द तो सृष्टि का मूल नहीं हो सकता। सृष्टि का प्रथम उपक्रम जिससे हुआ है, उसे

*राममूर्ति त्रिपाठी, पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उज्जैन विश्वविद्यालय, हिन्दी, संस्कृत तथा काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान हैं। संपर्क : 2 स्टेट बैंक कॉलोनी, देवास रोड, उज्जैन (म. प्र.)

यदि पूर्व विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, उज्जैन विश्वविद्यालय। हिंदी एवं सांस्कृत तथा काव्य शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान है। प्राथमिक स्पन्द (Primordial Causal Movements) यह नाम दें तो हम जिसे शब्द कहते हैंवह प्राथमिक स्पन्द ही है। उस प्राथमिक स्पन्द के मूल उत्स से नाना दिशाओं में और नाना भाव से अभिव्यक्ति हुई है और हो रही हैनाना धाराओं में सृष्टि का प्रवाह चल रहा है। इन धाराओं को 'कार्याभिव्यक्ति धारा' (Lines or streams of different Manifestation) कहा जा सकता है। इसकी ग्रहीता बहिरिन्द्रिय या अन्तरिन्द्रिय में से कोई नहीं है। वह प्राथमिक स्पन्द मात्र है। प्राथमिक स्पन्द कहने की जगह इसे केवल 'स्पन्द' कहना संगत होगा। जगत् के दो पक्ष हैंज्ञान और ज्ञेय। किसी भी विषय का ज्ञान या जानना या अनुभूति अपने मूल में एक स्पन्द ही है। विषय का ज्ञानेन्द्रियों पर धक्का, ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञानवाही स्नायुतन्त्र पर धक्का और उसका अनुभूति केन्द्र गुच्छ-विशेष पर धक्काइसी की प्रतिक्रिया तो ज्ञान या अनुभूति है। इसी प्रकार ज्ञेय पदार्थ मात्र का घटक परमाणु क्या स्पन्दनशील नहीं है? क्या उसकी भीतरी बनावट में स्थित एलेक्ट्रान गतिशील नहीं हैं? ज्ञान-ज्ञेयात्मक जगत् का जब सबकुछ स्पन्दनशील है तो मानना होगा कि उसका अनुगत तत्त्व 'स्पन्द' ही है। सारे ब्रह्माण्ड के मूल में यही चलने-फिरने का व्यापार हैइसी चल-फिर का नाम दिया गया है'स्पन्द'। जगत् और संसार अन्वर्थ संज्ञा है। पर क्या अचल की समझ के बिना सचल की धारणा बन सकती है? यह अचल सबका अधिष्ठान है। पूर्णता दोनों के सामरस्य में है और वह समरसतत्त्व 'सुखमहमस्वाप्सम्', न किञ्चिदवेदिषम्' की सुषुप्ति परवर्ती स्मृति के सर्ववादिसम्मत अविसंवादी अनुभूति के साक्ष्य पर चिदाह्लादमय है। ईशावास्य उपनिषद् में भी कहा है कि मूल तत्त्व एजनात्मा और अनेजनात्मा है'तदेजति तन्नैजति'। एजनात्मा शक्ति है और अनेजनात्मा शक्तिमान्साथ ही दोनों तादात्म्यापन्न हैंयह अद्वय दयात्मक है।

इस प्रकार इस आद्य स्पन्द को 'शब्द' या 'पर शब्द' संज्ञा दो कारणों से दी गई हैएक उसकी गतिशीलता और दूसरी सर्जनक्षमता। नाद को देखेंवह गतिशील भी है और सर्जनक्षम भी। इस प्रकार श्रोत्रग्राह्य शब्द अपर शब्द है और आद्यस्पन्द पर शब्दसाथ ही बोधात्मक। तन्त्र में वाक् या शब्द की यही परिकल्पना है। आगम कहता है कि परात्पर सत्ता की घटकीभूत अथ च अभिन्न चिदाह्लादमयी विमर्शात्मा शक्ति स्पन्दात्मा ही है। 'स्पन्द' शब्द किञ्चिच्चिलनार्थक स्पदि धातु से निष्पन्न है। यह किञ्चिच्चिलनात्मिका स्पन्दात्मिका शक्ति क्रियात्मक होकर भी क्रियात्मक इसलिए नहीं है कि वह कालातीत है। जहाँ स्पन्द होगावहाँ शब्दन भी होगा। यही मूल स्पन्द या शब्दन वह वाक् है जो सृष्टि की जननी है। आगम भी कहता है

'यस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः'।

तन्त्रालोक भी कहता है'संवित् प्राक् प्राणे परिणता'परात्पर सत्ता में सिसुक्षावश जो प्रथम स्पन्द हुआ वही तद्रूपां द्वारा शिवतत्त्व या उसका स्वभावभूत शक्ति कहा गया

स एक विश्वमेषितुं ज्ञातुं कर्तुश्चोन्मुखीभवन् ।
शक्तिस्वभावः कथितः हृदयत्रिकोणमधुमांसलोल्लासः॥

(महेश्वरानन्द कृत महार्थज्जरी', पृष्ठ 40)

वही (शिव ही) अपने हृदय के इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूपी त्रिकोण के माधुर्य से परिवर्द्धित उल्लास द्वारा अपने में ही स्थित विश्व का ईक्षण करने के लिए उन्मुख होने पर शक्ति-स्वभाव वाला कहलाता है अर्थात् जब शिव अपने हृदय में बीज रूप से विद्यमान अर्थ-तत्त्व को बाहर लाना चाहता है तब वह शक्ति कहलाता है। शक्ति चित् की क्रियाशीलता है। छान्दोग्य उपनिषद् भी यही कहती हैपर भाष्यकार आचार्य शंकर ने इस निहितार्थ को प्रस्फुटित नहीं किया

सदैव सोम्य इदमग्र आसीदेकमद्वितीयम् ।
तदैक्षत बहुस्याम्, प्रजायेयइति ।

यह ईक्षित्व विमर्श या उन्मुखता के समान है। भाष्यकार यहीं मौन है। यही शक्ति या स्पन्दात्मिका वाक्-सर्जिका है। ऋग्वेद से ही वाग्व्यापार को सृष्टि के पर्याय के रूप में देखा गया है

चत्वारि शृंगासूत्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति,
महो देवो मर्त्या आविवेश॥

यहाँ भाषा को वृषभ से उपमित कर कहा यह जा रहा है कि दोनों वर्षा करते हैं। भाषा एषणा की पूर्ति करती हैबरसती हुई। इसके चार शृंग हैंवैयाकरण इसे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात रूप में देखते हैंपर आगमिक इसे वाक् के चार भेद के रूप में देखते हैंपस, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। एक अन्य ऋचा में भी कहा गया है

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि'।

नागेश भट्ट ने दोनों अर्थों को भाष्यसम्मत माना है। उन्होंने कहा है कि श्रोत्रग्राह्य रूप वैखरी है, हृदयदेश में रहनेवाली चिन्तन में उपयोगी मध्यमा है। यह व्यवहार का कारण या साधन है। लोकव्यवहारातीत जो वाणी का रूप हैवह 'पश्यन्ती' है। यह रूप योगिप्रत्यक्षगम्य माना जाता है। साधारण मानव इसका व्यवहार

नहीं करते। 'परा' इन तीनों में ऊपर की वाक् है। इसे शब्द-ब्रह्म भी कहा जाता है। परा में किसी भी प्रकार का विभाग नहीं होता। पश्यन्ती में योगी अपने योगबल से प्रकृति और प्रत्यय का विभाग कर सकते हैं। नागेश ने कहा है

“तत्र श्रोत विषया वैखरी। मध्यमा हृदयदेशस्था पदप्रत्यक्षानुपपत्त्या व्यवहारकारणम्। पश्यन्ती तु लोकव्यवहारातीता। योगिनां तु तत्रापि प्रकृति प्रत्ययविभागावगतिरस्ति। परायान्तु न।”

तांत्रिकों ने चेतन को पाँच स्तरों पर देखा है जागर, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत। इसी के समानान्तर शब्द में भी अवस्थाओं या स्तरों की कल्पना की गई है जागर, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तुरीय शब्द ही शब्द ब्रह्म है (परा है) जिसका अतिक्रम करके अतितुर्य या परब्रह्म पद की प्राप्ति होती है। परमब्रह्म ही परमशिव है। तन्त्रों में इनके और भी रूप और भेद-प्रभेद कहे गए हैं। वैखरी में स्थूल वर्ण होते हैं। यह अभिलापरूपिणी, पंचदशाक्षर शशिमयी तथा लौकिक एवं वैदिक सम्पूर्ण शब्दों की आत्मा है। मध्यमा वैखरी वर्णों का वासनात्मक सूक्ष्म रूप है यहाँ वर्ण सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहते हैं। इसकी तांत्रिकी संज्ञा 'नाद' है। शब्दब्रह्म (परा) वायु के द्वारा नाभि से हृदयपर्यन्त अभिव्यक्त होता हुआ निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त होकर विशेष स्पन्द प्रकाश रूप नादमय मध्यमा वाक् के नाम से कहा जाता है। पद्मपादाचार्य इसकी व्युत्पत्ति देते हैं

“मध्ये मा बुद्धिर्यस्याः सा”

और भास्कर राय कहते हैं

“मध्ये स्थिता मध्यमा”।

पश्यन्ती और वैखरी के मध्य स्थित होने के कारण यह मध्यमा है। यह न तो 'पश्यन्ती' की भाँति केवल उत्तीर्णा है और न वैखरी की भाँति बाह्य। भास्कर राय इसे नादमयी मानते हैं और पद्मपादाचार्य बिन्दुमयी। राघवभट्ट इस नादबिन्दुमयी मानते हैं।

वस्तुतः बिन्दुरूपा पश्यन्ती है और नादरूपा मध्यमा और तत्त्वतः ये दोनों कार्यरूप हैं। कारणत्मक नानबिन्दु अलग है। यह मध्यमा भी द्विविध है स्थूल और सूक्ष्म। सूक्ष्म नवनादमय है और स्थूल नववर्गात्मक तथा भूतनिधि स्वरूप है। नवनाद से नववर्ग का जन्म होता है। कहीं-कहीं इसे त्रिविधपर, सूक्ष्म तथा स्थूलभी कहा गया है। पश्यन्ती वाक् ईश्वर तत्त्व है। यदि मध्यमा माषशमिकोपमा है तो पश्यन्ती वटधानिका के समकक्ष है। यही कार्यबिन्दु है। कारणबिन्दु स्वरूप शब्दब्रह्म (परा) जब पवन-प्रेरित होकर नाभिदेश को प्राप्त होकर विमर्शात्मक मन से युक्त होता है तो उसे ही सामान्य स्पन्द, प्रकाशरूप, कार्यबिन्दुमय पश्यन्ती वाक् की संज्ञा मिलती है। इसकी

व्युत्पत्ति है

“पश्यतिइति पश्यन्ती”।

इसी की दूसरी संज्ञा 'उत्तीर्णा' भी है

‘पश्यति सर्वं स्वात्मनि, करणानां सरणिमपि यद् उत्तीर्णा।’

यह सम्पूर्ण स्रक्ष्यमाण का आकलन तो करती ही है करणों की पद्धति को भी देखती है अतः पश्यन्ती और उत्तीर्णा कही जाती है। पश्यन्ती के भी स्थूल, सूक्ष्म और परजैसे तीन भेद हैं। इसमें वाच्य-वाचक का विभाग नहीं है, यह क्रमरहित, स्वरूपज्योति, स्वप्रकाश तथा अविनाशी सूक्ष्म वाक् की पश्यन्ती है। ईश्वराद्वयवाद में जो ज्ञान-शक्ति अथवा सदाशिवरूपता है वही वैयाकरणों की पश्यन्ती है। इसे ही वे लोग परतत्त्व कहते हैं। यही अनादि अक्षय शब्द-तत्त्व है। अभिनवगुप्त ने पश्यन्ती, महापश्यन्ती तथा परम महापश्यन्ती की भी चर्चा की है। परम महापश्यन्ती ही परावाक् है। सोमानन्द पश्यन्ती को ज्ञान-शक्ति कहते हैं, पर अभिनवगुप्त इसे इच्छा शक्ति कहते हैं। वस्तुतः इच्छा-शक्ति ज्ञान और क्रिया-शक्ति की अनुग्राहिका बीजावस्था है। जानने की इच्छा भी बोध ही है। इच्छा-शक्ति में बोध्य वस्तु का पूर्ण रूप से प्रकाशन होता है। परावाणी शब्द की चरम अवस्था है। इसी का अतिक्रम करके परब्रह्म या परमशिव पदवी की उपलब्धि होती है। पूर्ण होने के कारण ही इसे परा कहते हैं। इसकी व्युत्पत्ति है

“वक्ति विश्वमयलपति प्रत्यवमर्शन इति च वाक्”

अर्थात् समस्त विश्व के आस्वादात्मक चमत्कार रूप प्रत्यवमर्श द्वारा कथन करने के कारण इसे वाक् कहा गया है। इसे परम शिव का परमन्त्रात्मक विमर्श रूप हृदय कहा गया है। मन्त्र ही समग्र का हृदयभूत है। विमर्श के अतिरिक्त मन्त्र का और कोई अर्थ नहीं है और विमर्शन परावाङ्मय है अतएव सार भी। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा में कहा गया है

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।

सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः॥ 14/2॥

जगद् रूप अंकुर के लिए कन्दात्मक होने के कारण यह परावाक् कारणबिन्दु के नाम से कही जाती है। यह परावाणी निःस्पन्द मानी जाती है। इच्छा, ज्ञान और क्रियायहाँ सम्पष्टि रूप से विद्यमान रहती है। इसी परावाणी में सम्पूर्ण वाच्य-वाचक-वैचित्र्य मयूराण्ड के सदृश अनभिव्यक्त रूप अभेदापन्न होकर विद्यमान रहती है। विविक्त नभ के सदृश शोभित वह परमशिव बहिर्मुख होने की इच्छा से किञ्चित् चलित होता है। यह चलन उसका आद्य प्रसर है। इसी को स्पन्द, प्राण और

ऊर्मि की संज्ञा प्रदान की जाती है। अन्ततः सर्जना चाहे ईश्वरीय हो या मानवीयवह वाक् के इन्हीं स्तरों पर सम्पन्न होती है। उभयत्र उल्लसित चेतना पश्यंती भूमि पर स्रक्ष्यमाण का आकलन करती हुई मध्यमा स्तर पर स्फुट और वैखरी पर स्फुटतर हो जाती है।

वाक् की भीतरी खोज ही मन्त्र-साधना का पर्याय बनी। तन्त्रों में भाषा-विचार का यह दूसरा पक्ष है जहाँ ऐहिक और आयुष्मिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए वर्ण-घटित मन्त्रों का उपाय रूप में प्रयोग होता है। मन्त्र के तात्त्विक स्वरूप पर विचार करते हुए माना गया है कि शब्द का वह रूप परशब्द है जो स्पन्द मात्र हैयह स्वयं श्रुत शब्द नहीं है, पर शब्दतन्मात्र श्रुत शब्द हैफलतः वह अपरशब्द के वर्ग का हैपर यह तुम्हारे हमारे कर्ण द्वारा श्रुत शब्द नहीं हैपारमार्थिक कर्ण से सुना गया निरतिशय शब्द है। अवश्य ही यह अपरशब्द का सर्वोच्च स्तर या पराकाष्ठा तन्मात्र में है। इसके नीचे नाना स्तरों के शब्द हैं। मोटे तौर पर इन्हें दो प्रकार का समझ सकते हैं। यन्त्र विशेष या ध्यान-धारणा से जो सुने जा सकते हैंवे सूक्ष्म शब्द हैंशब्दतन्मात्रा उनकी पराकाष्ठा है और सचराचर कान में हम जो शब्द सुनते हैंवह स्थूल शब्द हैं। शब्द-भेद की तरह कर्णभेद भी है। इन त्रिविध शब्दों के मूल में परशब्द है जिसके न रहने पर प्रजापति भी नहीं सुन सकते। त्रिविध श्रुत शब्द के लिए त्रिविध श्रवण सामर्थ्य भी आवश्यक है। शब्दतन्मात्र के लिए पारमार्थिक कर्ण है, सूक्ष्म शब्द के लिए दिव्य-कर्ण और स्थूल शब्द के लिए भौतिक कर्ण है।

निष्कर्ष यह कि शब्द की ओर से हिसाब लगाने पर हमारे जगत् प्रत्यय की पाँच अवस्थाएँ हैंक्षोभशून्य अशब्ददशा, क्षोभ या चाञ्चल्य वाला परशब्द, जिसके सुनने के लिए कोई कान नहीं होता। उसके बाद वह चाञ्चल्य, जो निरतिशय भाव से सुना जा सकता हैतन्मात्रशब्द, तदनन्तर दिव्य कर्णगोचर सूक्ष्म और भौतिक कर्णगोचर स्थूल शब्द। पारमार्थिक कर्ण में ज्योंही शक्ति-व्यूह किसी प्रकार का चाञ्चल्य या क्षोभ पैदा करेगावही उस क्षेत्र का स्वाभाविक शब्द है। स्वाभाविक शब्द ही वस्तु का बीज मन्त्र है।

प्रत्येक द्रव्य की सृष्टि और स्थिति के मूल में शक्ति व्यूह (Constituting forces or Causal Stress) रहता है, निरतिशय शब्द-सामर्थ्य में उस शक्ति-व्यूह की जिस शब्द या रूप में अभिव्यक्ति होती है, वही पदार्थ का स्वाभाविक शब्द है। यही पदार्थ का स्रष्टा है। तन्त्र में इस शब्द या मन्त्र का विस्तृत विवरण है।

डायरी के पन्नों से

रमेश चन्द्र शाह*

भोपाल, 1 अगस्त, 2002

संयोग भी अकारण नहीं घटतेमानो मेरी इसी प्रतीति को ही बल देने के लिएमुझ किताबों से बुरी तरह उकता चुके आदमी परएक के बाद एक ऐसी किताबें टूटी पड़ रही हैं जिन्हें मैंने नहीं ढूँढ़ा-पढ़ा; खुद उन्हींने मानो मुझे ढूँढ़ निकाला, मेरा घेराव कियाऔर, अपने को पढ़वाकर ही छोड़ा।

पेसोआ और कृष्णमूर्ति की डायरियों के बाद अब यह 'रिफ्लेक्शंस ऑन मैटा-रिएलिटी'। लेखकऱॉय भास्कर, जिनका कभी नाम तक मैंने नहीं सुना था।

क्या यह सचमुच ही एक नया दार्शनिक प्रस्थान लगता है? ऱॉय भास्कर आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रवक्ता की तरह जाने जाते रहे हैं। इस किताब में वे अपने उस 'क्रिटिकल रियलिज्म' को नकारते नहीं उल्लंघते नजर आते हैं। यानी, अब तक की अपनी विचार-सरणी को छोड़े बिना, उसके अतिक्रमण की संभावना का शोध करते हुए अद्वैत अवस्थाओं और सत् (वीइंग) की कलाओं (फेजेज) के गहनतर, उच्चतर और सर्वव्यापी-पारमार्थिक यथार्थ को रेखांकित करते हैं : यह दर्शाते हुए, कि किस प्रकार वे अवस्थाएँ (समाधि की, लोकोत्तर अनुभूति की) समस्त मानवीयबल्कि, चराचर केजीवन को उसकी समग्रता में धारण किए हुए हैं। अर्थात्, वे अब यह प्रतिपादित कर रहे हैं कि इस अतिक्रामी यथार्थ का ज्ञान (=साक्षात्कार) इस द्वैतमूलक-द्वैतात्मक संसार की सीमाओं को वस्तुतः समझ लेना है; तथा ऐसी समझ को स्वायत्त कर चुकने के बाद हमारे अभी तक के जाने-समझे यथार्थ का गुणात्मक रूप से बदल जाना निश्चित है।

आलोचनात्मक यथार्थवादलेखक के कथनानुसार'यथार्थ को प्रक्रिया और परिवर्तन के हिसाब से संरचित और विशेषीकृत (Structured & differentiated) किए हैं। साथ ही वह समग्र (पूर्ण) के हिसाब से स्वयं में आत्म-चेतन मनुष्य को भी समाविष्ट किए हुए है।' जो आत्म-चेतन मनुष्य, फिर 'स्वयं यथार्थ के ही

*जानेमाने चिंतक, लेखक, समीक्षक।

रूपान्तरण का माध्यम' बन जाता है। लेखक कहता है कि अभी तक इन माध्यमों नेअर्थात् मानव-व्यक्तियों नेजिस तरह के संसार को बनाया हैजिसमें हम फिलहाल निवास कर रहे हैंवह द्वैत का संसार है : दुःख-उत्पीड़न-संघर्ष का संसार। ऐसा संसार, जिसमें हम न केवल अपने-आप से और एक-दूसरे से निर्वासित-उन्मूलित हैं, बल्कि अपने कार्यकलापों से तथा उस प्राकृतिक पर्यावरण से भी, जिसके साथ किए गए हमारे कार्य-कलाप ही हमें एक अभूतपूर्व संकट और आत्म-विनाश की ओर धकेल रहे हैं।

इस पुस्तक में लेखक का उद्देश्य यह दर्शाना है कि किस प्रकार अद्वैत को जाने-माने बिना इस मनुष्य नाम के जीव का और उसके द्वारा निर्मित संसार का कहीं कोई निस्तार नहीं है। वह दर्शाता है कि किस प्रकार यह मानव-निर्मित, अन्याय-उत्पीड़न-जिघांसा से पटा संसार स्वयं भी उन अद्वैत अवस्थाओं की बदौलत हीउन्हीं के बूतेटिका हुआ है, जो मानव जीवों के पारस्परिक सौहार्द-बन्धुत्व तथा सर्जनात्मक-बौद्धिक सामर्थ्य का भी स्रोत हैंवह प्रेरणा और सामर्थ्य, जिसके बिना हमारा कोई भी उद्योग, कोई भी कर्म-व्यापार चल ही नहीं सकता था। ज्यों ही हम इस सत्य के प्रति सचेतन होते हैं, हम उस उलटी प्रक्रिया का सूत्रपात कर देते हैं जो समस्त शोषण-उत्पीड़न-आत्मोन्मूलन की त्रासद प्रक्रिया कोउसके समूचे तन्त्र कोरूपान्तरित और विघटित करना शुरू कर देती है। जब जाकर हमारे सामने वह *विज्ञान*, *VISION* उघड़ता हैएक सन्तुलित विश्व का, और एक ऐसे मानव-समाज का चित्र जिसमें प्रत्येक मानव-जीव की अन्तर्निहित सम्भावनाओं का स्वतन्त्र विकास चराचर विश्व के विकास और आत्म-चरितार्थन की पूर्व शर्त बन जाता है। पूर्व शर्त भी, और परिणाम भी। सब कुछ के स्वाधीन विकास और सम्पन्नता की।

मन में, स्वभावतः यह सवाल उठता है कि आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रवक्ता दर्शनशास्त्री को ऐसे चराचरवादी, अद्वैत-प्रतिष्ठ और अद्वैतोन्मुखी विकास का इलहाम कैसे और कहाँ से हुआ?

पुस्तक के भीतरी आवरण-पृष्ठ पर तीन उद्धरण टाँके गए हैं : एक आईस्टाइन का, एक जलालुद्दीन रूमी का और, एक पाण्डिचेरी की श्रीमा का। श्रीमा ('मदर') वाले उद्धरण में उक्त अवश्यम्भावी रूपान्तरित जीवन-जगत् की भविष्यवाणी ही नहीं, उसके धरती पर पहले ही पूर्वाभासित, बल्कि प्रकट भी हो चुकने का विश्वास व्यक्त हुआ है : इस तरह, जैसे वह तथ्य हो, मात्र आभास नहीं। हालाँकि उस उद्धरण में यह भी संकेत है कि यह प्राकट्य अभी प्रच्छन्न है और स्वयं को बहुत धीमी गति से, बहुत आन्तरिक स्तर पर उन्मीलित कर रहा हैजिससे बाह्य जगत् अभी सर्वथा अपरिचित और अछूता है। अब यह है तो श्री अरविन्द के ही पूर्णयोग का विचार-दर्शन, किन्तु लेखक ने पुस्तक में कहीं भी उनका नाम नहीं लिया है : शायद इसे गैरजरूरी मानते हुए और विवादास्पद बनने सेअर्थात् एक गैर-अकादमिक, गैर-दार्शनिक, और

गैर-पारम्परिक संस्था के प्रवक्ता बन जाने के संभावित आरोप से बचने के लिए। किन्तु श्री अरविन्द के जीवन-कार्य से, पाण्डिचेरी के क्रान्तिकारी प्रयोग से परिचित हमारे जैसे लोगों के लिए यह मान पाना कठिन है कि अगर यह कार्य सामने न होता तो इसके बिना भी इस लेखक के लिए अपने 'क्रिटिकल रियलिज्म' वाले पृच्छा-पथ पर चलते हुए ही उसे लॉघकर इस मैटा-रियलिटी के दर्शन तकस्वयं अपने स्वाधीन तार्किक उपकरणों के बूते हीपहुँच पाना सम्भव होता। किन्तु यह प्रेरणा उसे उस स्रोत से मिली हो, तो इसमें ऐसी असंगति भी क्या है? आखिर उसने 'सुप्रामेण्टल' की भी बात की ही हैबेशक अपनी तर्क-संरचना की शब्दावली का उपयोग करते हुए, और उसी के हिसाब से।

अर्थात् 'मैटा-रियलिटी' का यह फलसफा श्री अरविन्द के 'द ह्युमन सर्किल' और 'दि लाइफ डिवाइन' में प्रतिपादित जीवन-दर्शन और विचार-दर्शन के मेल में ही है। किन्तु, रॉय भास्कर श्री अरविन्द का नामोल्लेख न करते हुए स्वतन्त्र और विविक्त रूप से अपना यह दावा पेश कर रहे हैं इस पुस्तक में, कि मानव-कर्तृत्व की उज्ज्वलतम संभावनाओं के विकास और चरितार्थन का मार्ग प्रशस्त करते हुए उनका यह मैटा-रियलिटी का फलसफा अतीत की महान् दार्शनिक परम्पराओं में अन्तर्निहित अनुभव और दर्शन का ही अद्यतन तार्किक पुष्टिकरण और पुनः प्रस्फुटन है। साथ ही, वह यह भी कहते प्रतीत होते हैं कि ऐसा होते हुए भी उनकी तर्क-पद्धति आमूलचूल नए ढंग की है : समकालीन विश्व और समकालीन विचार-प्रवाहों के भीतर से, उनसे टकराते हुए उनके पार देखने-जाने की मौलिक चेष्टा। उन्हीं की शब्दावली का प्रयोग करें, तो वह कहते हैं(हिन्दी अनुवाद मेरा)

हम चाहें तो सचमुच स्वाधीन होने बनने की इस आत्मलयी प्रक्रिया कोअर्थात् अपने-अपने जीवनों में अद्वैतानुभव के क्षेत्र-विस्तार की प्रक्रिया कोआज और अभी प्रारम्भ कर सकते हैं, बशर्ते हम उन सारे तत्त्वों के प्रति सर्वथा चेतन-जागरूक हो सकें जो हमारे वर्तमान जीवन को रचती हैं। साथ ही हम उन सारे तत्त्वों को, जो हमारे मानव-स्वभाव की आधारभूत स्वतन्त्रता, सर्जनात्मकता और प्रेम-क्षमता के आड़े आती हैं, उनके प्रतिकूल जाती हैंऐसे उन तमाम असंगत और अनिष्ट तत्त्वों का मूलोच्छेद कर डालने को कृतसंकल्प हों। तभीइस कर्मज्ञता और अद्वैतोन्मुख, अद्वैतानुभव-प्रेरित कर्मठता के चलते ही हम स्पष्ट देख पाएँगे कि यह जो दुःख-त्रास-शोषण-आत्मप्रवंचना की दुनिया हमीं ने निर्मित की हैयह दुनिया भी स्वयं उन सत्य-बीजों के द्वारा ही धारित और पोषित हैजो वस्तुतः भूमा, शान्ति और आत्म चरितार्थता की ओर ले जाने वाले समाज के बीज हैं। उन्हीं से हमारी मानवीय अवस्थिति अपने को सार्थक और कृतार्थ कर सकती है।

×

×

×

आज 15 अगस्त है। पहली बार, इस पूरे पखवाड़े के दौरान बादल दीख रहे हैं। बरसने वाले रिमझिम ही सही, तो भी झींसी से बेहतर। सूखी जमीन गीली हो रही है। कोई दो घण्टों से यह रिमझिम जारी हैयही क्या कम है!

अखबार में छपा है कि कोई चीकट कम्बल बन गया है प्रदूषणकारी गैसों का, जो बादलों को बरसने नहीं देता। इससे अधिक भयावह और क्या होगा? देश के कितने भाग सूखाग्रस्त घोषित किए जा चुके हैं। मध्यप्रदेश में उत्तरप्रदेश की तुलना में स्थिति थोड़ी बेहतर है, तो भी कई जगह यहाँ भीछत्तीसगढ़ में ही जैसेसूखा पड़ा हुआ है। पहली बार प्रधानमंत्री के भाषण में 'एक-एक बूँद पानी को बटोर कर सुरक्षित रख लेने' का संकल्प मुखरित हो रहा है। पर...अभी तक कहाँ थे आप भाईजान?

×

×

×

16 अगस्त, 2002

अचानक लगा जैसे एक बहुत भारी चट्टान जो अरसे से छाती पर जमी पड़ी थी, कुछ हिल-डुल रही है, खिसकने लगी है।...कैसा हल्कापन, कैसी राहत!

कहीं यह एक और भ्रान्ति, एक और प्रवंचना तो नहीं? नहीं! यह भ्रान्ति नहीं हो सकती क्यों कि मैं इस अनुभव को कहीं बहुत भीतर से पहचानता हूँ। शापमोचन जैसे अनुभव को।

'व्हॉट अ पिटी, दिस मेन नैवर फाउण्ड हिमसेल्फ'...अचानक एक वाक्य जाने किसका किसके बारे में बोला गयामेरे भीतर क्यों बज उठा था? और क्यों इसे अजीब ढंग से आकाशवाणी की तरह अपने ऊपर लागू होने की तरह महसूस करते हुए मुझे हँसी आ गई थी? जैसे...मैं जानता हूँ, यह तथ्य है, पर इससे मैं हताश या कुण्ठित नहीं कदापि। मैं जानता हूँ, मुझे पता है मैं इससे बाहर निकलने में सक्षम हूँ।

×

×

×

कहाँ तो महीने भरइस पूरे सावन भरसूखा पड़ा रहा था और कहाँ अब लगातार वर्षा ही वर्षा! धूप निकली ही नहीं तीन दिन से। कमरे की दीवारें गीली हो गई हैंछत चू रही है। तबीयत सील जाती है ऐसे में। इस कदर कीचड़ है रास्ते में, कि जरूरी चिट्ठियाँ छोड़ने के लिए सड़क तक जाना भी भारी पड़ रहा है।

ध्यान! ध्यान!! ध्यान!!!...ध्यान के अलावा और कुछ किया जा सकता है क्या इस मौसम में? किया क्यों नहीं जा सकता? पढ़ा जा सकता है। पर पढ़ने से एकदम विरक्ति हो गई है। क्या फिर से वही तीस वर्ष पहले के पन्ना वाले चक्र की पुनरावृत्ति होने जा रही है? और फिर से वही विपरीत परकाष्ठाओं के बीच झूला झूलते रहने की? नहीं, वैसा तो नहीं लगता। कुछ अलग अनुभव है इस बार। पर क्या?

शल्यजी सप्ताहभर रहके चले भी गए परसों। सुबह या शाम की सैर के दौरान उनसे कुछ दार्शनिक चर्चा भी होती ही थी। परन्तु ...जाने क्या बात है, कि कल्पना में जो संवाद हम अपने आत्मीय सखाओं के साथ करते हैं या करना चाहते हैं, वह उनकी साक्षात् उपस्थिति में कभी सम्भव नहीं होता।

अनेक शारीरिक व्याधियों और जराव्याध के आक्रमण से उत्पन्न कमजोरी और थकान के बावजूद शल्यजी की विचार-क्षमता जरा भी कुम्हलाई नहीं है। अभी 'उन्मीलन' में 'जगत्-चिन्तन' शीर्षक उनका लेख पढ़ा थाउसे लेकर बड़ी दिलचस्प और उत्तेजक बातचीत उनके साथ हुई। दार्शनिक के रूप में उनमें उतार के कोई लक्षण नहीं दीखते। हाँ, साहित्य पर बातचीत करते हुए (हाँ, वे कविता और उपन्यास के मर्मा आलोचक भी हैं, यह तथ्य काफी पहले उजागर हो चुका है) जरूर उनकी बातों में कभी-कभी शैथिल्य नजर आता है।

मैं उनसे रॉय भास्कर के बारे में Critical realism और Meta-reality वाली उसकी नई थीसिस के बारे में सघन संवाद चलाने को उत्सुक था। पर बात बनी नहीं। उन्होंने पढ़ा ही नहीं है रॉय भास्कर को, न उसके बारे में अपेक्षित कुतूहल जगा उनमें, तो फिर बात होती भी कैसे? मैंने जो बताया उन्हें, उससे वे तनिक भी उत्तेजित या उन्मेषित होते नहीं दीखे। तो मैंने छोड़ ही दी कोशिश।

शल्यजी के साथ एक शाम गोविन्दचन्द्र पाण्डेजी के यहाँ (उनकी बेटी सुस्मिता के घर) गए थे। उन्हेंजैसे कि मुझे शंका थीभोपाल बिलकुल रास नहीं आ रहा है। कहाँ इलाहाबाद और कहाँ भोपाल! कोई बात करने वाला नहीं। सत्संग और स्वाध्याय दोनों की संभावनाएँ यहाँ निरस्त हैं। टाइपिस्ट काम का नहीं। विश्वविद्यालय तो...कुछ न पूछिए। एक किताब नहीं मिलती वहाँ। किसी को कुछ नहीं पता।

पाण्डेजी को इन्दौर जाना था हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में। शल्यजी को मंगलाप्रसाद पारितोषिक उन्हीं के हाथों दिया जाना था। शल्यजी आज जयपुर प्रस्थान करने वाले होंगे। पता नहीं, विद्यानिवासजी को वहाँ क्या करना है। फोन आया था उनका उज्जैन से, कि 19 तक वे वहीं हैं और इसी बीच मेरे निबन्ध-संग्रह पर लिख डालेंगे। भोपाल भी आएँगे। पर यह निबन्ध-संग्रह की बात कहाँ से आईमैं समझ नहीं पा रहा हूँ। मुझे तो उत्सुकता हैमेरी कविताओं पर जो वे लिखनेवाले थे बहुत दिनों सेउसकी। विद्यानिवासजी को मेरी कविताएँ बहुत रुचती हैं। अपनी ओर से ही उन्होंने मन बनाया था मेरी कविता पर लिखने का। क्यों टल रहा है। वह कामइसका कारण भी उन्होंने मुझे बताया था। पर अब तो वह कारण भी रहा नहीं। अब लिखने में क्या दिक्कत है? कहूँगा उनसे, अभी आएँगे। यहाँ, तो।

इस बीच कक्कू ने उनके कई लेख पढ़ डाले और वह बहुत ही प्रभावित हुई। मुझे यह भी लगा कि उसकी कई जिज्ञासाएँ हैं जिनका विद्यानिवासजी ही समाधान कर सकते हैं। अब वे आने वाले हैं तो कक्कू यहाँ नहीं है। कितना अच्छा अवसर था

उनसे आमने-सामने बात करने का। फिर, पता नहीं कब आएँ। अभी कुछ दिन पूर्व अपनी एक चिट्ठी में विद्यानिवासजी ने अपनी अस्वस्थता का ऐसा घबरा देने वाला चित्र उभारा था कि तबसे मन चिन्ताकुल है उन्हें लेकर। पर वे हैं कि इसे चेतावनी की तरह न लेकर यात्राएँ किए जा रहे हैं। भगवान् जाने, किस स्रोत से शक्ति खींचते हैं इतना काम कर पाने और इस कदर यात्राएँ करने की।

×

×

×

24 अगस्त, 02

मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् में परसाई व्याख्यानमाला के अन्तर्गत महाश्वेता देवी का भाषण। विषय है 'साहित्य और भारतीय मानस।' एक अनोखा स्वाद उस हिन्दी का जो एक बंगाली बोल सकता है। संप्रेषण की कोई दिक्कत नहीं।

घंटे भर के भाषण में कहा क्या उन्होंने इस विषय पर? जरा याद तो करूँ। सिलसिलेवार।

एकपरसाईजी से कभी मिली नहीं। पहली बार अभी कल ही दो कहानियाँ उनकी पढ़ीं तो बेहद प्रभावित हुई कि इतना महान् लेखक हिन्दी में हो चुका है जिसने ऐसी अद्भुत बात कही है। रामायण के बन्दरों के बारे में कि वे बन्दर नहीं थे, आदमी ही थे। आदिवासी। इस देश के असली निवासी, जो अपने प्रतीक चिह्नों के गोत्र से पहचाने जाते थे। असली काम भारतीय लेखक का यही है जो परसाईजी ने किया है : हमारी पारम्परिक, प्रश्नविहीन आस्थाओं को झकझोरना। अतीत, परम्परा, हर चीज के प्रति एक 'इरैरेंस' (अवज्ञा) जगाना, हर मान्यता को शक की नजर से देखना। परसाई में मुझे उस आदर्श लेखक के दर्शन हुए, जिसे कभी से खोज रही थी।

दोशेक्सपीयर के शाइलॉक और क्रिस्टोफर मार्लो के 'ज्यू ऑव माल्टा' का हवाला देते हुए यहीं पर महाश्वेता देवी ने संकेतबड़ा चौंकाऊ, मगर, अनर्गल संकेतउभारा, कि यूरोपीय समाज के हाशिए पर पड़े यहूदियों के प्रति जो तिरस्कार का भाव पश्चिम में मुख्यधारा के लेखकों में पाया जाता है, वही भारतीय साहित्य में आदिवासियों-अल्पसंख्यकों के प्रति रहा है।

तीन तत्पश्चात् महाभारत का हवाला इसी सिलसिले में कि कैसे पदातिकों की स्त्रियों ने कुन्ती, द्रौपदी, वगैरह के साथ चलने के अनुरोध को ठुकराया। कहाहम वापस अपने जनपद जाएँगी। जब पूछा कौरव-पाण्डवों की विधवाओं ने "क्या करोगी वहाँ जाकर?" तो उन्होंने जवाब दिया "हम तुम्हारी तरह की औरतें नहीं हैं जिनकी एकमात्र गति पति ही है। हमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हम अपनी जमीन जोतेंगे, फिर से घर-बार बसाएँगे।"

चार एक बहुत बड़ा झूठ हर जगह इस देश में प्रचारित किया जाता रहा है कि भारतीय समाज में जो भी गड़बड़ियाँ हैं, सब मुस्लिम आक्रमणों के बाद ही पैदा हुई हैं। सच्चाई यह है कि भारतीय समाज सदा से ऐसा ही दमन-उत्पीड़न शोषण-विषमता वाला रहा है। मुसलमानों का इसमें कोई योगदान नहीं।

पाँच साहित्य का काम इन उपेक्षितों-वंचितों के जीवन के बारे में लिखना है। छहलोकवृत्त इतिहास का सबसे प्रामाणिक स्रोत है। मैंने 'झाँसी की रानी' लिखने से पहले बुंदेलखंड में घूम-घूम कर लोकगीत इकट्ठे किए। किंवदंतियाँ-कहावतें भी। लिखने का सही तरीका यही है।

सत्त इस नये अछूते विषय पर कहानियाँ-उपन्यास लिखने लगी, तभी अपने काम की दिशा मेरे लिए स्पष्ट हुई और आजीविका की समस्या भी हल हुई।

आठ फिर लगालिखना काफी नहीं है। अधूरा काम है। पूरा तभी होगा जब इनके बीच पैठकर इनके लिए कुछ किया जाए। इन उपेक्षित आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ना होगा। यह बात उनकी बहुत संगत-सटीक लगी : उनके जीवन-कार्य से पुष्ट और प्रमाणित। वास्तव में महज लिखना आपके अभीष्ट सामाजिक न्याय के लिए किए जाने वाले 'कर्म' का ऐवजी तो नहीं ही हो सकता।

महाश्वेता देवी को ज्ञानपीठ अवार्ड मिला था तब उनके दो उपन्यास पढ़े थे। मुझे उनमें उच्चकोटि की सृजन-क्षमता के दर्शन नहीं हो पाए। उसके बाद फिर उनकी कोई पुस्तक पढ़ने की उत्कण्ठा मन में नहीं जागी।

×

×

×

दिल्ली, 30 अगस्त

दिल्ली प्रवास अच्छा रहा। सम्मान-कार्यक्रम घण्टे भर का था। नेशनल म्यूजियम का सभागार खचाखच भरा था। चयन समिति के अध्यक्ष भोलाभाई पटेल का वक्तव्य सत्यप्रकाश मिश्र ने पढ़कर सुनाया। भोलाभाई पटेल के कथनानुसार मुद्दा यह भी उठा था कि मुझे मेरे रचनात्मक लेखन के लिए सम्मान दिया जाए कि आलोचना के लिए। वे स्वयं कवि या उपन्यासकार के रूप में भी मेरे योगदान को समान महत्त्व का अधिकारी समझते हैं। पर अन्त में चयन समिति के द्वारा आलोचना के लिए निर्णय लिया गया।

सम्मान कार्यक्रम की एकमात्र खटकने वाली बात थी म. प्र. के मुख्यमन्त्री दिग्विजय सिंह का भाषण। कइयों ने कहा भी कि 'पी. आर. ओ. की तरह बोल रहे थे।' मेरा नाम तक सही नहीं बोल पाए।

आठ बजे अपने कमरे में लौटे और तत्काल मित्रगण आने शुरू हो गए। निर्मलजी ने सबको चकित करते हुए बाकायदा एक संक्षिप्त, मगर मर्मस्पर्शी व्याख्यान दे डाला। लेखक के मर्म में कोई लेखक ही पैठ सकता है। परन्तु कितना विरल और दुर्लभ होता है ऐसा अवसर! मेरे लिए तो वह शाम इसी से सार्थक और स्मरणीय हो गई। अशोक, रश्मि, ज्योतीन्द्र, यूता, प्रयाग शुक्ल, ओम थानवी, ईश्वर, राजुला सभी थे।

पाँचवें भूटान नरेश का राज्याभिषेक : धर्मतन्त्र, राजतन्त्र और प्रजातन्त्र की अबूझ पहेली

ए. सी. सिन्हा*

पूर्वी हिमालय में अवस्थित द्रुकपन्थी भूटान विश्व का एकमात्र महायान लामावादी राजतन्त्र है। विगत एक वर्ष से वहाँ राजतन्त्र की स्थापना की शताब्दी मनायी जा रही है, जिसकी परिणति 6 नवम्बर से 17 दिसम्बर, 2008 के बीच राज्याभिषेक में होगी। वांगचुक वंश के पाँचवें नरेश के रूप में युवक राजकुमार खेसार नामग्याल की ताजपोशी उनके पिता और चौथे नरेश जिग्मे सिंग्चे वांगचुक के पदत्याग के बाद किया जाएगा। राज्याभिषेक में आमंत्रित अतिथियों में भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी के अतिरिक्त करीब 30 देशों के प्रतिनिधि, राजपरिवार के मित्रगण और अन्य गण्यमान्य व्यक्ति होंगे। आंतरिक प्रजातीय संघर्ष से जूझते भूटान के लिए समारोह एक नया अनुभव होगा।

द्रुकपन्थी धर्मराज

भूटान भारतवर्ष और तिब्बत के सांस्कृतिक सीमा पर अवस्थित है। ईसा से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व वहाँ भारतीय मूल के राजा राज करते थे। फिर ईसा की आठवीं शताब्दी में महागुरु (गुरुरिम्पोची) पद्मसम्भव का भूटान में अवतरण होता है और तत्कालीन प्रशासकों के बीच शांति स्थापित कर पद्मसम्भव बौद्ध धर्म स्थापित करते हैं। तदुपरांत भूटान अपने दक्षिणी पड़ोसी, लखनावती, कोचबिहार के सम्पर्क में रहता है। इस बीच भूटानी लामा नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे। परन्तु कालान्तर में उनका सम्पर्क कमजोर होता गया और तिब्बती लामाओं का आवागमन आरंभ हो गया। सतरहवीं शताब्दी में सिक्किम और भूटान दोनों राज्यों में तिब्बती लामाओं ने केन्द्रीय धर्मतन्त्र की स्थापना की। इस संदर्भ में शाबद्रुंग (धर्मराजा) नगाबांग नामग्याल (1594-1651) की भूमिका मूर्खन्य रही।

* प्रोफेसर ए. सी. सिन्हा, पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, पूर्व संकायाध्यक्ष पूर्वोत्तर पार्वत्य विश्वविद्यालय, शिलांग793022। सम्पर्क : डी-7/7331, बसन्त कुंज, नयी दिल्ली110070।

धर्मराजा द्रुक पन्थ के 18वें राजकुमार महंथ (Prince-abbot) थे; द्रुक पन्थ तिब्बती परंपरा में सनातनी माना जाता है; दूसरी तरफ दलाई लामा के केन्द्रीय नेतृत्व में गेलुक्पा ;ळमलसनाचंद्र पन्थ सुधारवादी कहा जाता है। दोनों पन्थों में द्वन्द्व और संघर्ष इतना बढ़ गया कि द्रुकपन्थी शाबद्रुंग (धर्मराजा) को तिब्बत से भागकर भूटान में शरण लेना पड़ा। फिर भी उनके विरोधी तिब्बत से बार-बार भूटान पर आक्रमण करते रहे। आक्रमणकारियों से निबटने के उद्देश्य से प्रथम धर्मराजा ने विभिन्न पहाड़ियों पर सुरक्षात्मक दुर्ग ;ऋवदहेद्ध बनवाये। क्योंकि राजव्यवस्था धर्मतांत्रिक थी, ये दुर्ग शीघ्र ही बौद्ध विहार, प्रशासन केन्द्र, स्थानीय राजस्व केन्द्र, सरकारी खजाने के रूप में उभरे। इस प्रकार भूटान के इतिहास में पुनाखा, पारो, थिम्फू, वांगदी, सिम्तोखा, टोंगसा आदि दुर्गों की भूमिका बढ़ती गयी। चूँकि पढ़े-लिखे भिक्षु इन दुर्गों में निवास कर धर्मग्रंथ का अध्ययन-अध्यापन करते थे, इस कारण इनकी दैनिक जीवन की भाषाजोखा, दुर्ग की बोलीकालांतर में भूटान की राष्ट्रभाषा के रूप में अपनायी जा रही है।

प्रथम धर्मराजा ने भूटान को स्थायित्व प्रदान किया और 57 वर्ष की अवस्था में वे समाधिस्थ हो गए। तदुपरांत उनके शिष्यों ने 54 वर्ष तक समाधिस्थ धर्मराजा के नाम पर राजकाज चलाया। इन अन्तरिम वर्षों में समाधि धर्मराजा को भोजन परोसा जाता रहा। उनसे आदेश प्राप्त कर राजकाज चलता रहा। वे, यहाँ तक कि, विशिष्ट आगंतुकों से मिलते भी रहे। कहा जाता था कि धर्मराजा की समाधि नहीं तोड़ी जा सकती और उनके मुख्य शिष्य उनसे सम्पर्क बनाए रहते थे, ताकि राज्य में व्यवस्था बनायी रखी जा सके। इसके बाद राजकुमार-महंथ के स्थान पर अवतारी परम्परा चल पड़ी। यानी धर्मराजा के समाधिस्थ होने पर नवजात शिशुओं में से उनके उतराधिकारी की पहचान विशिष्ट भिक्षु किया करते थे। कई कारणों से अवतारो की पहचान समय पर नहीं हो पाती थी। अकसर कई अवतार असमय ही काल की गाल में धकेल दिए जाते थे। प्रथम धर्मराजा की समाधि भंग होने के समय (1705 से 1931 तक) मात्र 5 सर्वमान्य अवतार हुए, परन्तु राज-काज धर्मराजा के नाम पर ही चलता रहा। समाधिस्थ होने के पहले ही धर्मराजा ने धार्मिक कर्मकाण्डों के लिए 'जे खेंपो' (Je Khenpo) और राज्य के लौकिक प्रशासन के लिए देवदेशी (देवराजा) की व्यवस्था कर डाली थी। आज भी धार्मिक क्रिया-कलाप में जे खेंपो की भूमिका प्रमुख है। 1651 से 1905 तक 55 देवराजा हुए इनमें 13 तो प्रतापी प्रशासक थे, जिन्होंने क्रमशः औसतन 11 वर्ष तक राज्य किया। इनके विपरीत एक दर्जन देवराजा बलपूर्वक पदच्युत किए गए और अन्य आधे दर्जन देवराजाओं को मार डाला गया।

1773 से 1863 तक भूटान में एक प्रकार से अराजकता छापी रही। भूटानी सुरक्षा बल प्रायः अपने दक्षिणी पड़ोसी कूचबिहार के सीमावर्ती क्षेत्रों पर धावा बोलते; पशु, स्त्री, बच्चों और व्यक्तियों को लेकर पहाड़ी दर्राओं में छिप जाते। इस प्रकार

भूटान के दक्षिणी सीमा से सटे 18 द्वार (ये राजस्व देनेवाली इकाइयाँ थीं, जो भूटान और कूचबिहार दोनों को कर प्रदान करती थीं और दोनों से सतायी जाती थीं।) को लेकर भूटान और भारत की प्रशासक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच लम्बा विवाद चला। भूटान की धर्मतांत्रिक व्यवस्था में धर्मराजा और देवराजा के बीच प्रशासकीय सीमाओं के अभाव में अंग्रेजी सरकार उलझन में पड़ जाती थी कि किस सार्वभौम अधिकारी से निबटे। तंग आकर 1863 में एग्ले ईडन को दूत बनाकर अंग्रेजों ने भूटान में प्रायः बलपूर्वक एक दल भेजा। भूटानी अधिकारियों ने एग्ले ईडन मिशन को काफी बेइज्जत किया और उससे बलपूर्वक एक असमान सन्धि पर हस्ताक्षर करवाया। मिशन की वापसी की राह में पर्याप्त रुकावटें डाली गयीं। फलस्वरूप 1864 में अंग्रेजों ने भूटान पर धावा बोल दिया। इस बार भूटान पूरी तरह परास्त हो गया और सिंचुला की सन्धि के अनुसार उसकी सीमा तय कर दी गयी। उसे पश्चिम में कलिम्पोंग और दक्षिण के 18 द्वारों से हाथ धोना पड़ा।

राजतन्त्र की स्थापना और अंग्रेजी कूटनीति की विजय

सिंचुला की सन्धि (1865) से करीब चार दशकों तक भूटान प्रायः पुराने ढर्रे पर ही चलता रहा। परन्तु गाहे-बगाहे अपने दक्षिणी पड़ोसी की तरफ झँक लेता था। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक तत्कालीन धर्मराजा और देवराजा की मृत्यु क्रमशः 1901 और 1903 में हो गयी। फलस्वरूप क्षीण व्यक्तित्व के तात्कालिक *जे खेंपो* ने दोनों पदों का कार्यभार सम्भाला। परन्तु राज्य का प्रशासन प्रभावी रूप से टोंगसा के राज्यपाल उगेन वांगचुक, के हाथ में रहा। यह वह समय था, जब भारत के ब्रिटिश वाइसराय, नाथाइल कर्जन, ने कर्नल यंगहस्बैंड के नेतृत्व में तिब्बत पर हमला किया। तिब्बत एक्सपेडिशन (Tibet Expedition, 1903-04) को सफल बनाने में भूटान के तत्कालीन राज्यपाल, टोंगसा पेनलप उगेन वांगचुक (b-1861; r-1907-1926) ने अंग्रेजी सेना के साथ तिब्बत की राजधानी ल्हासा की सफर की ओर अंग्रेजी पक्ष को परास्त तिब्बत के अधिकारियों के सामने प्रभावकारी रूप से रखा। भूटान की धर्मतन्त्रीय व्यवस्थाओं में व्याप्त अराजकता और अव्यवस्था से परेशान अंग्रेजों ने उगेन वांगचुक के रूप में एक चरित्रवान और प्रभावी नेता पाया। उस पर से अपने पूर्वजों के विपरीत उगेन वांगचुक अंग्रेजों का कृपापात्र बनने को तत्पर था। अंग्रेजों ने शीघ्र ही गांतोक (सिक्किम) स्थित अपने अंग्रेज पालिटिकल ऑफिसर जे. सी. ह्वाइट को भूटान भेज उगेन वांगचुक को Knight Commander of British Indian Empire (K C I B) से 1905 में अलंकृत किया। स्मरणीय है कि सिक्किम नरेश थुटुब नामग्याल, अपनी तिब्बत परक नीतियों के चलते अंग्रेजों की नजरबन्दी में तब दार्जीलिंग में दिन काट रहा था; ऐसी स्थिति में अंग्रेज एक विश्वस्त मोहरे की तलाश में थे और उगेन वांगचुक उस पर पहल करने के लिए तत्पर थे।

बीसवीं शदी के प्रथम दशक आते-आते पूरे भूटान पर उगेन वांगचुक की तूती बोल रही थी। प्रसिद्ध विहारों के भिक्षुक और महंथ या तो समाधिस्थ थे या धर्मशास्त्रार्थ में व्यस्त थे, प्रतिद्वन्द्वी क्षेत्रीय राज्यपाल निरस्त कर दिए गए। कुछ ऐसा कुचक्र चला कि भूतपूर्व धर्मराजा का सर्वमान्य अवतार नहीं चुना जा सका और देवराजा के स्थान पर नये देवराजा का चुनाव भी नहीं हो पाया। ऐसी स्थिति में भूटान का प्रशासन पूरी तरह टोंगसा राज्यपाल उगेन वांगचुक के हाथ आ गया। दिसम्बर 17, 1907 को पुनाखा के दुर्ग में भूटान परिषद की सभा हुई। उसमें सभी सभासदों ने एकमत से 45 वर्षीय टोंगसा राज्यपाल उगेन वांगचुक को भूटान का महाराजा चुना और उनके और उनके उत्तराधिकारियों के प्रति कृतज्ञ रहने की प्रतिबद्धता दिखाई। भूटान नरेश को देवराजा के क्रम में प्रशासक तय किया गया। धर्मराजा के अवतार के अभाव में उनकी पूजा-अर्चना का कार्य जेखेंपो को सौंप दिया गया। ब्रिटिश उपनिवेशवादी भारतीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में इस अवसर पर सिक्किम स्थित अंग्रेजी पालिटिकल ऑफिसर जान क्लाइड ह्वाइट ने वाइसराय की तरफ से बधाई दी। शीघ्र ही जनवरी 1910 में भूटान और अंग्रेजी भारत के बीच सन्धि हुई और भूटान नरेश स्वेच्छा से स्वच्छन्द रूप में कहता है कि भूटान अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बन गया है, और उसने दिल्ली दरबार (1911) में सिक्किमी राजकुमार के साथ भाग लिया। सिक्किम स्थित पालिटिकल ऑफिसर को भूटान के प्रशासन की देख-रेख की जिम्मेवारी सौंपी गयी। फलस्वरूप 1911 से 1946 तक गांतोक स्थित पालिटिकल ऑफिसर प्रति वर्ष अपना प्रतिवेदन केन्द्रीय सरकार को भेजते रहे। यही नहीं, भूटान के महाराजा और अंग्रेजी सरकार ने भूटान को भारतीय साम्राज्य के अधीन एक देशी राज्य माना और महाराजा भारत के अन्य भागों की यात्रा करते रहे और उसने हिन्दी भाषा के माध्यम से आधुनिक शिक्षा की शुरुआत 1914 में की।

धर्मराजा का असंतोष, दुखद मृत्यु और राजनैतिक प्रकरण

परंपरागत समाज में प्राचीन परिपाटियाँ एकाएक समाप्त नहीं हो जातीं। ऊपर कहा गया है तत्कालीन धर्मराजा के 1901 में समाधिस्थ होने के उपरान्त उनका अवतार नहीं पाया गया। परन्तु यह वाक्य अर्द्ध सत्य है। बात यों हुई कि आधुनिक अरुणाचल प्रदेश के तवांग क्षेत्र में जिम्मे दोजी नामक बालक का जन्म एक प्रतिष्ठित कुल में 1905 में हुआ। विधिवत् पहचान के उपरान्त धर्मराजा के इस नये अवतार को उनकी माता और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ 'तालो' विहार में लाया गया और उनकी विधिवत् शिक्षा और पालन-पोषण आरम्भ हुआ। स्मरणीय रहे कि द्वितीय वांगचुक नरेश जिम्मे वांगचुक का जन्म भी 1905 में ही हुआ था। धर्मराजा की उपस्थिति राजपरिवार को प्रायः खटकती रही। परन्तु जनक्रोश के भय से महाराजा धर्मराजा की उपेक्षा भी नहीं कर सकते थे। भूटान की यात्रा पर गए अंग्रेज आगंतुक

प्रायः धर्मराजा से मिलते रहे और अपने प्रतिवेदनों में उनका जिक्र करते रहे। यहाँ तक कि दूसरे भूटान नरेश जिग्मी वांगचुक (1905-1952) के पदग्रहण समारोह में (1926) धर्मराजा की मुख्य भूमिका थी। कहते हैं कि धर्मराजा की माँ दबंग व्यक्तित्व की महिला थीं और उनकी मान्यता थी कि धर्मराजा ही भूटान का वास्तविक राज्याध्यक्ष है और वांगचुक नरेश ने अंग्रेजों की सहायता से भूटान को हड़प लिया है। धर्मराजा के अधिकार को प्रकट करते हुए उनकी माँ ने कुछ तवांगी चरवाहों को भूटान के पूर्वोत्तर सीमांत पर पट्टे भी जारी कर दिए। स्पष्ट है कि पता चलने पर महाराजा ने उन्हें निरस्त कर दिया। परन्तु धर्मराजा और महाराजा के सम्बन्धों में कटुता आ गयी, जो कालान्तर में बढ़ती ही गयी।

इस बीच भारतीय समाचार पत्रों ने मई 1931 में छापा कि तथाकथित 'भूटान नरेश' के एक भाई ने महात्मा गाँधी से गुजरात के बोरशाद स्थान पर मुलाकात की और भूटान को अंग्रेजों तथा उसके 'नकली' नरेश से मुक्त कराने की अपील की। तथाकथित दूत ने महात्मा गाँधी को 16 प्रकार के उपहार दिए और कहा कि महात्मा और धर्मात्मा (धर्मराजा) अंग्रेजों के विरुद्ध साथ हों और इस संदर्भ में भूटान के धर्मराजा भविष्य में महात्मा गाँधी से मिलेंगे। इस सूचना के बाद अंग्रेजों और भूटान नरेशदोनों केहोश उड़ गए। छानबीन शुरू हुई; कुछ पड़ताल के बाद पाया गया कि धर्मराजा का भाईचोक्सी ग्लात्सेनएक सेवक के साथ गाँधी से मिला था। बात यों हुई कि बारशाद में मिलने के बाद महात्मा गाँधी ने चोकसी को उसके भाई और तत्कालीन धर्मराजा के नाम हिन्दी में एक पत्र दिया। चूँकि धर्मराजा हिन्दी से अनभिज्ञ थे, फलस्वरूप हिन्दी पत्र का तिब्बती भाषा में अनुवाद कलकत्ते के किसी 'बाबू' से कराया गया। 'बाबू' के पेट में बात पची नहीं और बात उजागर हो गयी।

फिर क्या था? अंग्रेजी अधिकारी और भूटान नरेश ने दमन का रास्ता अपनाया। धर्मराजा को कैद कर तालो विहार में बन्द कर दिया गया। धर्मराजा के भाई और उसके सेवक से महाराजा ने स्वयम् जानकारी प्राप्त की। शीघ्र ही इन दोनों ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। धर्मराजा के परिवार और सम्बंधियों को तरह-तरह से सताया गया। अंग्रेजों की सलाह पर भूटान की उत्तरी सीमा पर 'फौजी' पहरा बिठा दिया गया। कहानी का पटाक्षेप करने के लिए 12 नवम्बर, 1931 को धर्मराजा को प्रताड़ित करने के बाद भोजन में विष देकर मार डाला गया। अंग्रेजों और भूटान नरेश ने समझा चलो समस्या का समाधान हो गया। परन्तु कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। दलाईलामा के मन्त्रिपरिषद् ने महाराजा को एक 'तथाकथित तिब्बती लामा' (धर्मराजा तावांग में पैदा हुए थे, जिसे तिब्बत अपना मानता था) की हत्या करने के अपराध के लिए प्रताड़ित किया और धमकी दी कि क्यों नहीं ऐसे अधार्मिक कृत्य के लिए महाराजा को दण्ड दिया जाए। घबराए महाराजा ने अंग्रेजों की सलाह माँगी। अगले वर्ष जुलाई में तत्कालीन पालिटिकल ऑफिसर कर्नल वेयर ने तिब्बती राजधानी ल्हासा

की यात्रा की और दलाईलामा को आश्वस्त किया कि मृत धर्मराजा की मृत्यु सामान्य स्थिति में हुई थी और वे वास्तव में भूटानी नागरिक थे। यह प्रकरण एक अंग्रेजी कूटनीति का शर्मनाक उदाहरण पेश करता है। झुंझलाये महाराजा ने अपने अंग्रेज आकाओं को सलाह दी कि महात्मा गाँधी से बात करने के बदले उन्हें फाँसी दे देना चाहिए। इसके बाद से भूटान नरेश भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन से विद्वेष करने लगे।

इधर भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष बढ़ता जा रहा था। ऐसा वातावरण बन रहा था कि अंग्रेजों को देर-सवेर भारत छोड़ना ही था। ऐसी स्थिति में अंग्रेज भक्त अन्य देशी रजवाड़ों की तरह जिग्मी वांगचुक, द्वितीय भूटान नरेश भी चिंतित थे। अंग्रेज पालिटिकल ऑफिसर की राह पर सिक्किम नरेश के समान भूटान ने भी अपने माँग पत्र के साथ एक प्रतिनिधि मण्डल कैबिनेट मिशन से मिलने 1946 में दिल्ली भेजा। भूटान की मुख्य माँगें थीं : भूटान का ब्रिटिश छत्रछाया में बना रहना। द्वार क्षेत्रीय पहाड़ी और जंगली भागों का भूटान में विलयन और अनवरत वित्तीय सहायता। भूटानी शिष्ट मण्डल कैबिनेट मिशन से तो न मिल सका। उसे सलाह दी गयी कि वापस जाकर अंग्रेजी न्याय की प्रतीक्षा करे। अन्त में भूटान को सलाह दी गयी कि अंग्रेज किसी भी प्रकार की सुरक्षा देने में असमर्थ हैं; क्षेत्रीय सीमाएँ नहीं बदली जा सकतीं और अंग्रेजों के वापसी के पश्चात भूटान को अन्त में नयी उभरती भारतीय सरकार से नये सम्बन्ध बनाने पड़ेंगे। इसी प्रकार अंग्रेजी सरकार ने भारतीय संघ को भी सलाह दी कि भूटान को भारत में विलय करने के स्थान पर उसे एक अलग परन्तु आश्रित राज्य बनाना श्रेयकर होगा। स्मरणीय है कि भूटान के दक्षिण-पश्चिमी भाग में नेपाली मूल की जनजातियाँ रहा करती थीं। सिन्चुला सन्धि के उपरान्त भूटान का सम्पर्क भारत स्थित ब्रिटिश अफसरशाही से बढ़ता गया। 19वीं सदी के अंतिम दशकों में अंग्रेजों ने हिमालय के सम्बन्ध में आक्रामक नीति Forward Policy to the Himalayas अपनाई। इस नीति में नेपाली फौजियों, श्रमिकों और कृषकों को अंग्रेजों ने अपने ढाल के रूप प्रयुक्त किया। फलतः भूटान का दक्षिण-पश्चिमी भाग नेपाली कृषकों की सघन आबादी में बदल गया। स्मरणीय है कि ये नेपाली कृषक भूटान के द्रुकपा खेतिहरों के विपरीत जमीन की मालगुजारी मुद्रा में जमा करते थे। व्यापार, विनिमय पद्धति पर आधारित भूटान की कमजोर अर्थव्यवस्था के लिए नेपाली कृषकों से प्राप्त राजस्व भूटान के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। कालान्तर में इसी क्षेत्र से विकास कार्यों के लिए मजदूर, औद्योगिक श्रमिक, निर्यात के लिए मौद्रिक उपज (cash crops) और आयातित दैनिक खपत की वस्तुओं के बाजार प्राप्त हुए। परन्तु इसी क्षेत्र से राजनैतिक सुगबुगाहट भी आरम्भ हुई।

भारतवर्ष में व्याप्त स्वाधीनता आंदोलन 1940 के दशक में हिमालयी रजवाड़ों तक जा पहुँचा। यह गैर बात है कि राजनैतिक आंदोलन के समर्थन के लिए आवश्यक नागरीय और औद्योगिक केन्द्रों के अभाव में पूर्वी हिमालयी रजवाड़ों में जनतांत्रिक

पहल सफल नहीं हो पायी। फिर भी प्रयास किए गए और कालान्तर में इन प्रयासों से सबक भी सीखे गए। दिल बहादुर गुरुंग, दिल बहादुर क्षेत्री, जी. पी. शर्मा आदि के प्रयास से 56 वर्ष पूर्व 1952 में भूटान राज्य काँग्रेस की स्थापना की गयी। नेपाली काँग्रेस और सिक्किम राज्य काँग्रेस की तरह भूटान राज्य काँग्रेस ने अपना माँग पत्र तैयार किया। भूटान काँग्रेस की मुख्य माँगें थी : सामन्ततन्त्र का उन्मूलन, प्रशासन का जनतान्त्रिकरण, नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की बहाली और भारतीय संघ से निकटता की नीति। शिक्षा, संचार, और प्रभावी प्रशासन के अभाव में उपरोक्त माँगें भूटानी प्रजा की समझ से परे की बात थी। भूटान काँग्रेस का प्रभाव दक्षिणी भूटान के नेपालियों तक ही सीमित रहा। चूँकि भूटान काँग्रेस के पदाधिकारी भारत और नेपाल आते-जाते रहे। फलस्वरूप नेपाली प्रशासकों ने भूटान काँग्रेस को प्रवासी नेपालियों की शैतानी की संज्ञा दे डाली। भूटान काँग्रेस ने 22 मार्च 1954 को अपने सत्याग्रह के क्रम में गेलुगफू स्थान पर धरना दिया। प्रशासन ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। सत्याग्रहियों के नहीं मानने पर स्थानीय प्रशासन के संगठित सुरक्षाबल ने उनपर आक्रमण किया और कुछ सत्याग्रहियों को पकड़कर कैद भी कर लिया गया। हिमालयी रजवाड़ों और भारतीय संघ के इतिहास की यह एक अनिर्णय की घड़ी है, जब सामान्य जनता कंधे से कंधा मिलाकर नये भविष्य का निर्माण करना चाहती थी; परन्तु राजनेता इतिहास को पीछे ढकेलने में लगे रहे। फलस्वरूप भूटान काँग्रेस के निर्वासित नेता राजनैतिक प्रस्ताव ही पास करते रहे।

संयोजित विकास, असुरक्षा और ल्हात्शामा पलायन

द्वितीय भूटान नरेश, जो वर्षों से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन से द्वेष रखता था, अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त आता देख चिंतित हो उठा। अंग्रेजी अफसरों की सलाह पर उसने कैबिनेट मिशन से मिलने के लिए अपनी मांगों की सूची के साथ एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली (1946) में भेजा। भूटान और सिक्किम के प्रतिनिधियों को सलाह दी गई कि वे अंग्रेजों से कोई अपेक्षा न करें; नयी भारतीय सरकार से अपने सम्बन्धों की समीक्षा करें और भारत सरकार को सलाह दी गई कि वह रजवाड़ों के साथ के संबंधों में आमूल परिवर्तन न करे। यह एक ऐसा ऐतिहासिक मोड़ था, जब केवल चीन ने बलपूर्वक तिब्बत को हड़प लिया; नेपाल नरेश अपने ही सभासदों के विरुद्ध भागकर दिल्ली के शरणागत हुए; सिक्किम और भूटान तथास्थिति बनाए रखने के लिए भारत से संधि करते हैं। एक तरफ भारतीय संघ के कर्णधार अपनी नयी आजादी को सम्भालने में व्यस्त थे, तो दूसरी तरफ हिमालयी जनता सामन्ती अंधकार को सहन करने को तैयार नहीं थी और जनतंत्र की राह पर चलने को उद्धत थी। परन्तु ध्यान देने की बात है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, छापाखाना और समाचार पत्र एवं आवागमन के साधनों के अभाव में भूटानी जनता जंगल-पहाड़ों में बन्दप्राय पड़ी थी।

इस आत्मघाती 'एकला चले' की नीति से बाहर लाने के लिए भारतीय प्रधानमंत्री ने 1958 में पहल की। सड़कों के अभाव में बरास्ते सिक्किम और तिब्बत पंडित नेहरू भूटान चोड़ों पर चढ़कर पहुंचे। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और आवागमन के विकास के लिए भूटान को सहायता देने की कोशिश की। इन योजनाबद्ध विकास कार्यों के लिए सक्षम और सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता थी, जिसकी भरपाई पीढ़ियों से उपेक्षित नेपाली मूल के भूटानी श्रमिकों ने की। भूटान नरेश ने इन नेपाली मूल की प्रजा को 1958 से नागरिकता प्रदान की। यही नहीं, उन्हें एक नयी पहचान भी दी। दक्षिणी प्रान्तों के निवासी ल्हात्शाम्पा (Lhotshampas)। राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धों के लिए भूटान सरकार पांच हजार और बाद में 10 हजार रुपये की पारितोषिक देती रही। 1960 से आरम्भ कर अगले 25 वर्ष द्रुकपा और ल्हात्शाम्पा सम्बन्धों को स्वर्णिम युग कहा। परन्तु 1985 आते-आते स्थिति बदलने लगी।

आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास के क्रम में बेगारी की समस्या उठ खड़ी हुई। वहाँ विदेशों से विशेष शिक्षा प्राप्त कर भूटानी आते रहे। द्रुकपा मूल के लोगों के अहं को चोट लगने लगी कि धर्मराजा शबद्रंग के राज्य में उन्हें तरजीह न देकर गैर-बौद्ध ल्हात्शाम्पाओं को नौकरी दी जा रही है। फिर क्या था? सरकार के कुछ प्रभावशाली प्रशासकों की शह पर अफवाह फैलाई गई कि शिक्षित ल्हात्शाम्पा विदेशी नेपालियों की सहायता से भूटान का नेपालीकरण करना चाहते हैं। फिर पुलिस प्रशासन और प्रभावशाली सामंत सभी एक तरह से संशय का वातावरण बनाने में लग गए। नेपाली मूल के किसानों की जमीन, जायदाद, पशु आदि जब्त किए जाने लगे। उनकी स्त्रियों को बेइज्जत किया जाने लगा। बच्चों का स्कूल का दाखिला रोक दिया गया। नेपाली और संस्कृत भाषा की पढ़ाई बन्द कर दी गई। यहाँ तक कि पीले गेंदे का फूल, जिसे देवताओं पर चढ़ाया जाता है, रोपने पर पाबन्दी लगा दी गयी। विवाहित नारियों को आदेश दिया गया कि वे द्रुकपा नारियों के समान अपने बाल कटवायें। सिन्दूर लगाने पर पाबन्दी लगा दी गयी। घर, गाँव, बखार जला दिए गए। शिकायत करने पर पुलिस नेपाली मूल के नागरिकों को प्रताड़ित करती रही। पुलिस और द्रुकपा गुण्डों से डरकर लोग जंगलों में भाग गए। यहाँ तक कि सरकार ने अपनी राष्ट्रीयता के प्रमाण-पत्र को मानने से इनकार कर दिया और उन्हें नकली करार देकर शिकायत कर्त्ताओं को या तो जेल में डाल दिया या जलावतन करने के लिए मजबूर किया। जब 1990 में भयग्रस्त जनता ने विरोध में धरना देने का प्रयास किया तो उन पर गोलियाँ चलाई गईं।

ऐसी स्थिति में बड़े पैमाने पर नेपाली मूल के भूटानियों का भूटान से पलायन आरम्भ हुआ। भारत और भूटान के बीच खुले सरहद का फायदा उठाकर ल्हात्शाम्पा भारत या नेपाल में अपने सम्बन्धियों, मित्रों या हमदर्दों के पास चले गए। प्रजातीय

संघर्ष को रोकने के उद्देश्य से भारत सरकार ने भूटान से निर्वासित लोगों को अपनी जमीन पर शिविर बनाने की मनाही कर दी। ये सताये हुए शरणार्थी खुली सीमा का लाभ उठाकर नेपाल चले गए। नेपाल सरकार ने अपने यहाँ आठ शिविरों में शरणार्थियों को संयुक्त राष्ट्र की शरणार्थी आयोग (UNHCR) के संरक्षण में रखा। शरणार्थियों में तरह-तरह के सताये नर-नारी, भूतपूर्व सरकारी अधिकारी, शिक्षक-विद्यार्थी, विधायक, कृषक, मजदूर यहाँ तक कि भूटान के केन्द्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य तक शामिल थे। शरणार्थी पहले तो इक्के-दुक्के आते रहे; फिर इनकी संख्या बढ़ने लगी। एक ऐसी भी स्थिति आयी कि वे किराये की बसों या ट्रकों में आने लगे। 1991 के अन्त तक आठ शिविरों में शरणार्थियों की संख्या बढ़कर 75,000 हो गयी। भूटानी शरणार्थियों की समस्या अब स्थानीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय बन गयी। नेपाली और भूटानी सरकारी प्रतिनिधि पंद्रहों बार मिले। पर शरणार्थी पिछले 18 वर्ष से शिविरों में हैं। अब उनकी संख्या बढ़कर 1,25,000 से ऊपर हो गयी है। दक्षिणी भूटान में अभी भी पर्याप्त लहात्शाम्पा रह गए हैं। परन्तु उनको द्रुक संस्कृति में आत्मसात करने के प्रयास तेज कर दिए गये हैं। विरोध करने पर उन्हें शरणार्थियों का समर्थक बताकर सताया जाता है। उनकी नागरिकता और अचल सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है। उन्हें सरकारी पदों से निकाल दिया जाता है। उनके बच्चों को स्कूलों में दाखिला नहीं मिलता। लाचार वे देश छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं। शरणार्थियों की समस्या पर भूटान की अन्य देशों में भर्त्सना भी हुई। परन्तु भूटान का मानना है कि उसे अपनी संस्कृति की रक्षा करने का अपने देश में पूरा अधिकार है भले ही उससे मानव अधिकारों का हनन होता हो। दुनिया के प्रभावशाली राष्ट्र, भारत संघ सहित, मौन हो भूटान का समर्थन कर रहे हैं। शरणार्थियों का शरणदातानेपालखुद अपनी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। फिर कौन शरणार्थियों की सुने? इस बीच निष्क्रिय शरणार्थी अतिवादी संगठनों से जुड़ते जा रहे हैं। जनतान्त्रिक विधि को असफल होते देख उन्होंने हथियार उठाना आरम्भ कर दिया है। गाहे-ब-गाहे आतंकवादी हमलों की सूचना भूटान सरकार देती रहती है। ऊपर से तुरा यह कि अन्य संगठनों के अलावा इन्होंने भूटान कम्युनिस्ट पार्टी (B C P) भी बना रखी है। अन्तिम समाचार यह है कि अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि पश्चिमी देश अधिकतर शरणार्थियों को अपने यहाँ अस्थायी रूप से बसाने पर राजी हो गए हैं। भूटान खुशी-खुशी और नेपाल लाचारी में इस पहल से सहमत हैं। परन्तु शत प्रतिशत ग्रामीण कृषक शरणार्थी एकमात्र भूटान जाने की जिद पर अड़े हुए हैं।

प्रजातन्त्र की पहल, संविधान, चुनाव और राज्याभिषेक

नेपाली मूल के लहात्शाम्पाओं ने लिखित संविधान, संवैधानिक राजतन्त्र, संविधान प्रदत्त मूलभूत नागरिक अधिकार, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, नियमित चुनाव

तथा संसद नियन्त्रित मन्त्रिपरिषद् की माँग प्रजातीय संघर्ष के साथ कर दी थी। परन्तु उन माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सरकार की पूरी शक्ति लहात्शाम्पा पलायन के उपरान्त हुई आर्थिक क्षति को सँभालने और विश्व जनमत को आश्वस्त करने में भी लगी हुई थी कि वास्तव में नेपाली मूल के भूटानी सरकार हड़पना चाहते थे। और ऐसा भूटान सरकार की तथाकथित नेकनीयती के विरुद्ध हो रहा था। भूटान सरकार की कूटनीति और भारत सरकार के पुरजोर समर्थन के चलते बीसवीं सदी के अन्त तक विश्व जनमत भूटानी शरणार्थी समस्या से थक सा गया था। चौथे भूटान नरेश, जिग्मे सिंघे वांगचुक, ने अपनी जनता को वचन दिया था कि अगर उन्होंने प्रजातीय संघर्ष का समाधान नहीं किया, तो सिंहासन त्याग देंगे। 1998 में उन्होंने प्रशासन की अध्यक्षता सीमित रूप से चुने गये मन्त्रिपरिषद के पक्ष में त्याग दी। शीघ्र ही उन्होंने हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में 40 सदस्यीय सभासदों की संविधान नियामक समिति का गठन किया। समिति से कहा गया कि वह एक सरल, संक्षिप्त और संपूर्ण संविधान का प्रारूप पेश करे। 2002 के अंत तक समिति ने अपना काम पूरा किया। भूटान नरेश ने आदेश दिया कि संविधान के प्रारूप पर सभी 20 जनपद विकास परिषदें विचार करें। तदुपरांत नरेश और राजकुमार ने सभी जनपदों की यात्रा की; जनसभाओं में संविधान के प्रारूप को पेश किया; जनता के विचार सुने और बहस के बाद जनता के विचारों को प्रारूप में समावेश किया गया। तदुपरान्त प्रस्तावित संवैधानिक प्रारूप को सांगदू (देश की तत्कालीन संसद) में उसके विचार के लिए पेश किया गया। लम्बी बहस के बाद सांगदू ने संविधान की मंजूरी दी।

संविधान के अनुसार भूटान में वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित द्विकक्षीय (Bicameral) संसद होगी, जिसमें 25 सदस्यीय राष्ट्रीय राज्य परिषद (National Council) और 47 सदस्यीय राष्ट्रीय विधान सभा (National Assembly) होगी। फिलहाल दो ही राजनैतिक दल विधिवत परिसूचित होंगे, जिनके उम्मीदवार चुनाव लड़ पाएँगे। एक सक्षम चुनाव आयोग की व्यवस्था की गयी है, जो कि चुनाव की निगरानी करेगा। चुने हुए सभासदों की सभा के बहुमत का नेता देश का प्रधानमन्त्री होगा, जो भूटानी सरकार का प्रमुख होगा। भूटान नरेश यथावत राष्ट्राध्यक्ष बने रहेंगे। इधर संसद ने संविधान की मंजूरी दी, उधर चौथे भूटान नरेश ने महाराजकुमार के पक्ष में पदत्याग की घोषणा कर डाली। महाराजकुमार खेसार जिग्मे वांगचुक का तत्काल राज्याभिषेक नहीं किया जा सकता था, क्योंकि सरकारी ज्योतिषियों ने बताया था कि ऐसी शुभ घड़ी 6 नवम्बर, 2008 को पड़ेगी। इसी ऊहापोह में वांगचुक वंश के सिंहासनारोहण की शताब्दी भी आ धमकी। फलस्वरूप 17 दिसम्बर 2007 से 17 दिसम्बर 2008 तक सिंहासनारोहण समारोह वर्ष मनाया गया, जिसकी परिणति पंचम वांगचुक नरेश के पदग्रहण समारोह के समापन से हुई। इस बीच मार्च 2008 में चुनाव आयोग ने वयस्क मताधिकार के आधार पर भूटानी संसद का पहला चुनाव सम्पन्न

कराया। द्रुक फ्यूसुना शोग्पा (Druk Phuensum Tshogpa) दल ने नेशनल असेंबली की 47 में से 45 स्थानों पर विजय पाई और P.D.P. (People's Democratic Parti) मात्र दो स्थानों पर विजयी रही। विजयी दल D.P.T. के दस सदस्यों की मन्त्रिपरिषद ने जिग्मी थिन्ले के नेतृत्व में शपथ ली। स्मरणीय है पहले पहले भूटान सरकार के मन्त्रिपरिषद में दो सदस्य नेपाली (ल्हात्साम्पा) मूल के हैं। नई सरकार और प्रधानमन्त्री (Lyochhan) जिग्मी थिन्ले से समस्त विश्व को काफी आशा है कि कटुता को भुलाकर भूटान के राजनैतिक जीवन में नया अध्याय जोड़ेंगे। फिलहाल तो नई सरकार वांगचुक वंश के सत्ताग्रहण की शताब्दी और पाँचवें द्रुक नरेश के सिंहासनारोहण के समारोह में व्यस्त है। निश्चित रूप से भूटान के लिए यह एक स्मरणीय ऐतिहासिक क्षण है।

पश्चिमी बुद्धिजीवी, पत्रकार, राजनेता और पर्यटक हिमालय, उसकी जनता, उनकी संस्कृति, उनके धर्म और परम्पराओं को एक अजूबा (Exotic) समझ आकर्षित होते हैं। नेपाल और सिक्किम में जनतन्त्र की स्थापना के बाद पश्चिमी पर्यटकों की दिलचस्पी उनमें कम होती जा रही है। दूसरी तरफ सभी विसंगतियों के विपरीत भूटानी नरेश, बौद्धधर्म, बौद्ध भिक्षु, बौद्ध विहार, पर्वत श्रृंखलाएँ, याक और पूरा वातावरण एक आश्चर्य की तरह आकर्षित करता है। तबाही, फटेहाली, पिछड़ेपन, गरीबी, अशिक्षा, बीमारी आदि से भरपूर दक्षिणी भूटान की तरफ बहुत ही कम पर्यटकों की नजर जाती है। नये महाराजा से नयी उम्मीदें हैं कि वे पुराने घाव पर मरहम लगाएँगे और परिस्थिति वश प्रवासी बनी अपनी प्रजा से नया संवाद आरम्भ करेंगे। सौभाग्य से जिग्मी थिन्ले के रूप में उन्हें एक अनुभवी और सुलझा हुआ प्रधानमन्त्री मिला है। आशा है नवयुवक भूटान नरेश नयी जनतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाएँगे और सम्पूर्ण भूटानी जनता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इस प्रकार द्रुक धर्मतन्त्र, वांगचुक राजतन्त्र और नवजात जनतन्त्र एक पहेली न बनकर, एक नए सुखद प्रयोग के रूप में विश्व पटल पर आच्छादित होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Aris Michael, Bhutan : *The Early History of a Himalayan kingdom*, Vikas Publishing House, New Delhi, 1980.
2. Sinha AC, *Bhutan : Ethnic Identity and National Dilemma*, Reliance Publishing House, New Delhi, 2nd Edition, 1998
3. Sinha, AC, *Himalayan kingdom Butan : Tradition, Transition and Transformation*, Indus Publishing company, New Delhi, 2nd Edition, 2004

हिन्दू इतिहास-बोध और रामायण

शंकर शरण*

जिनका इतिहास होता है
उनके देवता हँसते हुए नहीं होते :
कैसे हँस सकते?
और जिनके देवता हँसते हुए होते हैं
उनका इतिहास नहीं होता :
कैसे हो सकता? (अज्ञेय)

यूरोपीय लोग मानते हैं कि भारतीयों में इतिहास बोध नहीं है। उनके प्रभाव में प्रायः हमारे बहुत से बुद्धिजीवी और विद्वान भी यही दुहरा दिया करते हैं। इसका प्रमाण उन्हें यह दिखता है कि भारत में इतिहास रूपी अध्ययन विषय की सामग्री नहीं मिलती। इस देश में कौन कब राजा हुआ, उसने कितने दिनों तक राज किया, किसको हराया, क्या क्या काम किए, आदि बातों को लिखकर इन्हें इतिहास की किताब का रूप देने की प्रवृत्ति भारतवासियों में कभी नहीं रही। क्या इससे स्पष्ट नहीं होता कि हममें इतिहास बोध नहीं है?

जी नहीं। जैसा कविगुरु और चिंतक रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा, “भारत की प्रवृत्ति यदि राष्ट्र-गठन की होती तो अवश्य ही आज भारत में बहुत बड़ी-बड़ी इतिहास की सामग्रियाँ देखने को मिलतीं और उनसे आधुनिक इतिहासज्ञों का काम बहुत कुछ सहज हो जाता। किंतु यह देखकर मैं इस बात को किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता कि भारत ने अपने अतीत और भविष्य को किसी एक सूत्र में ग्रन्थित नहीं किया है।..वह सूत्र सूक्ष्म है, परन्तु उसका प्रभाव साधारण नहीं है। स्थूल भाव से वह दीख नहीं पड़ता, परन्तु उसी ने अब तक हमें अपने पूर्वजों से अलग नहीं होने दिया।” (धम्मपदम्) इसीलिए महाभारत में वर्णित भारत तथा आज का भारत, बहुत बातों में भिन्न होने पर भी एक ही बने हैं। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी ऐसा साम्य

*डॉ. शंकर शरण, प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद; संपर्क : IV/28, एन. सी. ई. आर. टी क्वार्टर्स नसीरपुर रोड, द्वारका, नई दिल्ली 110045

धरती पर अन्य किसी देश के जनजीवन और संस्कार में नहीं है। इसलिए, कहना यह चाहिए कि भारत का इतिहास बोध अलग तरह का है जिसे यूरोपीय भौतिकवादी दृष्टि नहीं समझ सकती। यह कोई अनोखी बात नहीं है कि सामान्य भारतवासी के लिए कभी विचारणीय विषय नहीं रहा कि रामायण या महाभारत के विवरण तथ्य हैं या कल्पना। विदित है कि भारत में पिछले दो सौ वर्षों से अधिक समय से ईसाई मिशनरी राम, कृष्ण, शिव, गणपति, काली तथा समस्त हिन्दू देवी-देवताओं को काल्पनिक या कुत्सित बताते रहे हैं। किन्तु जनता और विद्वानों के लिए भी यह कभी विचार करने या उत्तर देने योग्य बात नहीं समझी गई। हिन्दू पण्डित ऐसी बातों को हँस कर उड़ा देते थे, मानो किसी मूढ़ बालक की बात सुनी हो। इसका एक कारण था कि अनादिकाल से भारतवर्ष का कण-कण शिव, राम और कृष्ण से व्याप्त है, जिसे किसी बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

दूसरी बात यह भी है कि हिन्दुओं की भारतीय सभ्यता की इतिहास-दृष्टि ही पूर्णतः भिन्न है। इसीलिए साधारण जनता, गाँव के किसान और सम्पूर्ण स्त्री-समाज को रामायण या महाभारत के विवरणों के लिए वैसे किसी प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं है, जिसे यूरोपीय या सामी दृष्टि 'हिस्टोरिकल एविडेंस' कहती है। हमारे बुद्धिजीवियों ने 'हिस्टरी' को 'इतिहास' का पर्याय मान लिया है, इसलिए वे उस बेकार की परेशानी में पड़ते हैं जिसमें भारतीय जनता कभी नहीं पड़ती। यूरोपियनों की 'हिस्टरी' मनुष्य केन्द्रित अथवा स्व-केन्द्रित है। यह घटनाओं की वह क्रम-कथा है जो उन्हें अतीत में ही प्रतिष्ठित कर के देखती है। वे विगत की सभी घटनाओं का अन्वेषण मात्र उसमें अपना स्थान ढूँढ़ने के लिए, अपने वर्तमान हेतु कोई सबक सीखने, आदि कारणों से करते रहते हैं। यूरोपियनों द्वारा काल की इस *हिस्टोरिकल* धारणा और बोध ने ही मानवीय अस्तित्व को इकाइयों में भी बाँट दिया है।

हिस्टरी से नितान्त भिन्न अवधारणा है इतिहास। शब्दशः अर्थ करें तो इति+ह+आस। अर्थात् ऐसा ही होता आया है। विगत को देखने-समझने की यह दृष्टि ही हिन्दू या भारतीय बोध है। यह काल के उस आयाम को भी प्रस्तुत करती है जो आवर्ती है, सतत वर्तमान है और निरन्तर अपना नवीकरण करता चलता है। इसीलिए, हिन्दू मानस रामचरित, कृष्ण-लीला, रामायण, महाभारत, जैसी अजर-अमर भारतीय परम्परा को *हिस्टरी* के चौखटे में नहीं रखता। हम अपने पूर्वजों, पितरों का स्मरण एक भास्वर तेजोरूप में करते हैं, किसी पार्थिव विग्रह के रूप में नहीं। इसीलिए हमारे यहाँ पूर्व पुरुषों की मूर्तियों में वर्तमान के चित्रों का वर्णन अधिकतर नहीं मिलता। न ही भारतवर्ष के महान मनीषियों, कवियों, शासकों, कलावन्तों, वास्तुकारों ने कभी अपने बारे में कोई छवि, विवरण या स्मारक बनाने का कार्य किया। इसे वे निरर्थक मानते थे। यह अनायास नहीं था, इसके पीछे वही इतिहास बोध भी था।

भारतवर्ष के महान मनीषियों, कवियों, शासकों, कलावन्तों, वास्तुकारों ने कभी

अपने बारे में कोई छवि, विवरण या स्मारक बनाने का कार्य नहीं किया। यह आसानी से समझा जा सकता है कि जिन्होंने कोणार्क या कांचीपुरम् का महान् वास्तुशिल्प अथवा नालंदा या तक्षशिला के विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय बनाए, बनवाए वे अपनी भी मूर्तियाँ, विवरण आदि भी बनवा ही सकते थे। किन्तु सहस्रों वर्षों की ज्ञात भारतीय परम्परा में कहीं इस तरह की प्रवृत्ति ही नहीं मिलती। यहाँ धर्म, कर्म, अर्थ, जीवन, कला, साहित्य, शिल्प, वास्तु सब कुछ सदैव शिव, नारायण, ब्रह्म को अर्पित रहा है। यह कोई साधारण बात नहीं कि भारत में लोगों के नाम भी देवी-देवताओं के प्रसाद-स्वरूप, उनके अनुरूप रखे जाते हैं। अतः हमारे देश में महान शासकों, विद्वानों, कलाकारों आदि के बारे में भी मोटे व्यक्तिगत विवरण भी नगण्य, वह भी किसी संयोग से ही मिलते हैं। क्योंकि इन चीजों को भारतीय मानस निरर्थक मानता था। इसके पीछे वही विशिष्ट इतिहास बोध था। इसे गम्भीरता से समझने का यत्न करना चाहिए।

पश्चिम के हिस्टरी और भारत के इतिहास में एक मूलभूत अन्तर है। हिन्दू इतिहास-बोध की विशेषता उस पहचान का प्रभाव है जो काल के एक इतिहासातीत आयाम को भी देखती है। यह पहचान भारतीय लोक-साहित्य को पश्चिम की *हिस्टरी* के काल से अलग, भारत के *इतिहास* के काल में रख देती है। भारतीय दृष्टि में काल की एक आवर्ती धारणा भी थी, जिससे शाश्वतता, नित्यता की बहुमूल्य धारणा चलती आई है। अज्ञेय ने इसी बिन्दु को समझाते हुए लिखा था कि यहाँ शाश्वतता का अभिप्राय "एक *अन्तहीन काल* नहीं है बल्कि एक *कालातीत आयाम* मात्र है। हमारी स्मृति किसी भी समय किसी घटना का पुनराह्वान कर सकती है और अतीत का पुनर्निर्माण कर सकती है, इससे उसे एक कालातीत आयाम मिल जाता है। इतना ही नहीं, स्मृति में किसी अनुभूति की *गुणात्मकता* अपने मूल रूप में सुरक्षित रहती है, यहाँ तक कि जिस घटना से वह अनुभूति सम्बद्ध है उसके प्रायः सम्पूर्णतया विस्मृत हो जाने पर भी अनुभूति की गुणात्मक छाप सुरक्षित बनी रह सकती है।" (शब्दों पर बल मूल में है)। चाहे तो इसी से हमें यह समझने का संकेत मिल जाता है कि श्रीराम और रामायण की पश्चिमी अर्थ में ऐतिहासिकता के प्रश्न से भारतीय मानस क्यों निर्द्वन्द्व बना रहता है। निर्मल वर्मा लिखते हैं :

...और तब मैं अपने से पूछता हूँ कि 'बहते पानी' के साथ हिन्दू-मानस का इतना घना लगाव क्या इसलिए तो नहीं है कि उसमें मिथक और इतिहास का सम्पूर्ण भेद छिपा है? और इस 'भेद' में सिर्फ रहस्य का ही आशय नहीं है, बल्कि अलगाव का भी। हम इतिहास के प्रति सचेत नहीं थे, यह सही नहीं है। सही यह है कि हम इतिहास के प्रति सचेत होते हुए भी उसके बिम्बों का निर्माण निरर्थक समझते थे। इसलिए हम परम्परा को भी उतना महत्त्व नहीं देते थे, जितना दूसरे देशों के लोग, क्योंकि हम उसे बीते हुए समय का अंश नहीं

मानते थे, जिसे वर्तमान में ढोना है। हमें अपनी परम्परा का उतना ही अनुभव होता है, जितना 'अतीत' हम अपने भीतर लेकर चलते हैं...

(पत्थर और बहता पानी)

इस प्रकार भारतीय इतिहास-बोध की विशेषता यह थी कि हम इतिहास को पुराण में परिवर्तित करते हैं। एक कालबद्ध चेतना को हम व्यापक देशकाल-मुक्त चेतना में परिवर्तित करते आए हैं। उससे हमारे लिए काल-खण्डों का कोई महत्त्व नहीं होता है। इतने काल-खण्डों के बीत जाने पर भी कितना अंश हमारे भीतर समा गया है, उसी का महत्त्व रहा है। अतः हम इतिहास का बोझ नहीं ढोते थे। अपने हर कर्तव्य का निश्चय इतिहास से नहीं करते थे। यह तो पिछले दो सौ वर्षों की अँग्रेजी शिक्षा ने हमें इतिहासग्रस्त बना दिया है। हम हर चीज की शती मनाने लगे। ध्यान देने की बात है कि यहाँ मुगलों के जमाने से पोर्ट्रेट-चित्रण शुरू हुआ और अँग्रेजों के शासन से चौराहों पर लॉर्डों, वायसरायों, आदि की मूर्तियाँ लगनी शुरू हुई। उनकी देखा-देखी भारतीय उच्च-वर्ग ने नकल आरम्भ कर दी। यूरोप से प्रभावित इस इतिहासग्रस्तता या ऐतिहासिकतावाद ने हमारे चिन्तन को काफी दूर तक विकृत किया है। अज्ञेय ने ठीक ही ध्यान दिलाया था कि हमारे प्रबुद्ध वर्ग द्वारा 'आधुनिक' और 'पश्चिमी' को पर्यायवाची मान लेना भी उसी ऐतिहासिकतावाद की देन है! इस में यह भी जोड़ सकते हैं कि भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद को सहजता से विज्ञान मान लेना भी उसी नकल में सम्भव हुआ।

अन्यथा यूरोपीय ऐतिहासिकता से विपरीत भारतीय परम्परा में मनुष्यों के चेहरे, तिथियाँ, विवरण आदि का ब्योरा रखना, उनका आकलन करना, इन सबको महत्त्वपूर्ण मानना कभी नहीं रहा। हम जिस किसी को भी याद करना चाहते हैं उसके चरित्र, उपदेश, विचारों से अपने को जोड़ते हैं। उसकी भौतिक घटना उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम या योगेश्वर कृष्ण वास्तव में हुए थे या नहीं, यह प्रश्न ही भारतीय मानस के लिए अनर्गल है। उसके लिए 'मर्यादा पुरुष' के रूप में राम का आदर्श स्थायी सत्य बन चुका है। तदनुरूप हमारे लिए सत्य का अर्थ ऐतिहासिक नहीं, शाश्वत है। यह काल की नितान्त भिन्न धारणा से जुड़ा है। इसीलिए भारतीय धर्म अथवा लोक-परम्परा में सत्य इतिहास के नियमों के अधीन नहीं है। (जो यूरोपीय-ईसाई चिंतन में है)। यही कारण है कि ग्रामीण, पारंपरिक भारत की मानसिकता में शाश्वत, नित्य, सनातन का एक मौलिक स्थान आज भी है। इसी तरह के किसी प्रसंग में प्रसिद्ध लेखक यू. एस. अनंतमूर्ति ने भारत के 'अशिक्षित जन-गण' को प्रणाम किया था 'जिनके कारण भारतीय सभ्यता-संस्कृति बची हुई है'।

इसलिए कह सकते हैं कि मानव जीवन और समाज में जो फिर-फिर होता है, उसके सतही आँकड़ों, तिथियों, विवरणों में नहीं, बल्कि शाश्वत, तत्त्व-ज्ञान में भारतवासियों की जिज्ञासा थी। जबकि काल के प्रति यूरोपीय धारणा, जो स्वयं बहुत

पुरानी नहीं है, अप्रत्यावर्ती, एक दिगोन्मुख थी। भारतवासी की जिज्ञासा काल के सातत्य में प्रतिष्ठित थी। जबकि यूरोप की आधुनिक जिज्ञासा काल में अपना स्थान ढूँढ़ने के प्रति थी। इसी से आज सारा इतिहासलेखन प्रेरित है। पश्चिमी प्रणाली की शिक्षा पाया हुआ हमारा शिक्षित वर्ग भी उससे आक्रान्त है। यह अनायास नहीं है कि महान भारतीय आख्यानों की ऐतिहासिकता के प्रमाण माँगे जाने पर चाहे हमारे बुद्धिजीवी हलकान होने लगते हैं। किन्तु भारतीय किसान या हिन्दू पण्डित, दोनों ही नीलकण्ठ, त्रिपुरारी शिव, दैत्यवंशनिन्दक, रघुकुलतिलक राम या लीलाधर कृष्ण के लिए ऐतिहासिक प्रमाण, 'हिस्टोरिकल एविडेंस' की कोई परवाह नहीं करते। अतः राष्ट्रीय या हिन्दूचेतना सम्पृक्त बुद्धिजीवियों को भी रामायण, श्रीराम या रामसेतु आदि के ऐतिहासिक प्रमाण की अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यह तो इतिहास की तुलना में हिस्टरी को महत्त्वपूर्ण मानने, अपने गहन कालबोध की तुलना में यूरोपियनों के सतही बोध को अधिक मूल्यवान समझने, और राजनीतिक रूप में अपने शत्रु या विरोधी के बनाए गए खेल के नियम स्वीकार कर लेने जैसा हुआ। कवि अज्ञेय ने हमें ठीक ही सचेत किया था, "क्या यह अनिवार्य है कि हम जैसे-जैसे काल को पहचानते चलें वैसे-वैसे सनातन को गँवाते चलें?"

(शाश्वत काल : इतिहास का क्रम)

किन्तु, मात्र प्रसंगवश, इसका अर्थ यह नहीं कि रामायण या महाभारत के विवरणों के लिए यूरोपियन हिस्टरी दृष्टि को सन्तुष्ट करने के लिए प्रमाणों की कोई कमी है। हम ऐतिहासिक प्रमाणों की परवाह नहीं करते, यह एक बात है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि रामायण के विवरणों के यथार्थ-घटित होने के साक्ष्यों का अभाव है। यूरोपियन 'हिस्टरी' लेखन के सिद्धान्तों की कोई भी टेक्स्ट-बुक उलटिए। उसमें इसकी लंबी गिनती मिलती है कि वे किन चीजों को ऐतिहासिक स्रोत या साक्ष्य मानते हैं। उसमें प्रत्यक्षदर्शी विवरण, दस्तावेज, पुरातात्विक चिह्न, शिला-लेख, भित्ति-चित्र, शास्त्रीय ग्रंथ, समकालीन साहित्य, कला-कृतियाँ, प्रचलित कथाएँ, लोक-आख्यान, लोकापवाद, नगरों, स्थानों के नाम, विभिन्न स्मारकों से जुड़ी किंवदंतियाँ आदि सभी कुछ को साक्ष्य माना जाता है। विशेषकर यदि वह उपर्युक्त वर्णित एकाधिक साक्ष्यों से परस्पर संपुष्ट होता हो। इस प्रकार स्वयं यूरोपियन आधारों पर भी रामायण और महाभारत के विवरणों के वास्तव में घटित हुए होने के जितने साक्ष्य हैं, उतने अनेक हाल की घटनाओं के भी नहीं हैं। कृपया याद रखें : आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण का समकालीन, प्रत्यक्षदर्शी विवरण लिखा है!

वही बात महाभारत के बारे में भी है। दोनों प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ से भी अधिक हैं। क्योंकि दोनों में रचयिता के इतिहासकार नहीं, वरन् प्रत्यक्ष द्रष्टा होने का प्रमाण मिलता है। कृष्णद्वैपायन व्यास भी महाभारत के परवर्ती रचयिता नहीं, उसमें वर्णित कई प्रसंगों में स्वयं भागीदार हैं। अतः व्यास तथा वाल्मीकि, दोनों क्रमशः

महाभारत और रामायण में प्रतिभागी हैं। दोनों इन ग्रंथों में आते हैं, कहीं न कहीं उनका योगदान है। वाल्मीकि ने स्वयं राम को सम्बोधित करते हुए भी कुछ बातें लिखीं। राम के पुत्र लव-कुश उनके आश्रम में रहते थे। रामायण को ध्यान से पढ़ें। एक स्थल पर वाल्मीकि राम को चुनौती देते हैं और जिस भाषा में चुनौती दी गई है वह बड़ी कड़ी भाषा है। पण्डित विद्यानिवास मिश्र उस पर लिखते हैं:

पूर्वजों का स्मरण करके जब कोई बात कही जाती है तो उन्होंने (वाल्मीकि ने) कहा कि 'प्राचेतसोहं दशमः पुत्रः'। 'मैं प्राचेतस का दसवाँ पुत्र' 'मैं कह रहा हूँ, मेरा वचन प्रमाण मानो, रघुवंशी। मैं कह रहा हूँ अपने पितरों का जो स्मरण किया है और बड़ी कड़ाई से कहा है कि मैं कह रहा हूँ कि सीता निष्पाप हैं। यदि मैंने जीवन भर सत्य आचरण किया हो, जीवन भर तप किया हो तो मैं कहता हूँ कि सीता निष्पाप हैं। और तुम अपने अन्तःकरण में जानते थे, सीता शुद्ध हैं और तुमने लोकापवाद से भयभीत होकर त्याग किया है। तुम्हारे ऊपर मुझे बहुत क्रोध है। तुमने त्रिलोक के कण्टक रावण का वध किया, पर इसके लिए बहुत अमर्ष है। तो यह एक साक्ष्य मात्र नहीं है...

(वाद्य वृन्द)

इस प्रकार, दोनों ग्रन्थों में प्रत्यक्ष द्रष्टा का प्रमाण मिलता है। अभिनवगुप्त ने तो इतिहास का अर्थ ही बताया है कि जो प्रत्यक्ष देखा गया है। इति का अर्थ, जो प्रत्यक्ष है, इसको देखकर जो कहा जाता है वह इतिहास है। अतः यूरोपियन जिसे प्रमाण मानते हैं, उस दृष्टि से भी रामायण के विवरण प्रामाणिक हिस्ट्री है। वह काल्पनिक कथा नहीं है। इसके अनगिनत और साक्ष्य उपलब्ध हैं। भारत में ही नहीं, श्रीलंका में भी साहित्य ही नहीं, पुरातत्त्व, लोकपरम्परा, भाषा, स्थान, स्मृति-चिह्न आदि अनेक रूपों में रामायण और महाभारत की ऐतिहासिकता के असंख्य प्रमाण उपलब्ध हैं। राम की तरह कृष्ण भी उतने ही वास्तविक रहे हैं। यद्यपि यहाँ भी वही बात है कि भारतवासियों के लिए उनकी ऐतिहासिकता का आध्यात्मिक महत्त्व कम है। हमारे लिए उस कृष्ण का महत्त्व है जो हमारे गान में है। जो हमारे नृत्य की गति में है, वह कृष्ण हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। भारतवासियों के लिए सुदूर पाँच हजार वर्ष पूर्व के कृष्ण का वह महत्त्व नहीं है जितना एक सनातन वर्तमान कृष्ण का है। फिर भी, वास्तविक कृष्ण भी थे, यह सत्य है।

श्री अरविन्द, जो यूरोपीय और भारतीय दोनों मनीषा के प्रकाण्ड विद्वान थे, ने लिखा है : "मुझे नहीं लगता कि इसमें कोई भी सन्देह हो सकता है कि कृष्ण नामक व्यक्ति भारतीय अतीत का कोई गल्प या काव्यमय आविष्कार नहीं है, बल्कि वह वास्तव में इस धरती पर हुए थे और यहाँ के इतिहास में एक भूमिका निभाई थी। ...ऐतिहासिक रूप से कृष्ण निस्संदेह हुए थे। उनका नाम सर्वप्रथम *छांदोग्य उपनिषद्* में आता है जहाँ पता चलता है कि वह आध्यात्मिक परम्परा में ब्रह्म ज्ञाता के रूप में

एक जाने-माने नाम थे। एक व्यक्तित्व और अपने जीवन की परिस्थितियों के साथ इतने सुपरिचित कि उनके बारे में देवकी पुत्र कृष्ण कहने से ही सबके लिए स्पष्ट हो जाता था कि किसकी बात हो रही है। उसी उपनिषद् में विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र का भी उल्लेख मिलता है और चूँकि परम्परा उन दोनों को इतनी निकटता से जोड़ती है कि दोनों ही महाभारत की घटनाओं के प्रमुख पात्र हैं, हम सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दोनों समकालीन थे और वह महाकाव्य बहुत सीमा तक वास्तविक पात्रों से सम्बन्धित है जो इस जाति (भारतवासियों) की स्मृति में गहरे खुदा हुआ है..." (श्री अरविन्द, कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 22, पृ. 425-26)

प्रमाण चर्चा के प्रसंग में एक भिन्न प्रकार का उल्लेख लें। *गीता* में श्रीकृष्ण कहते हैं, "पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्। झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्ववी॥" (श्रीमद्भगवद्गीता, 10/31) अर्थात्, मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूँ, तथा मछलियों में मगरमच्छ और नदियों में श्रीभागीरथी गंगा हूँ। ध्यान दें, इसमें श्रीकृष्ण ने सभी उपमाएँ वास्तविक अस्तित्व की दी हैं वायु, मगरमच्छ, जाह्ववी और राम। यदि वायु, मगरमच्छ और गंगा को काल्पनिक नहीं कहा जा सकता तो क्या कारण है कि राम को काल्पनिक मान लिया जाए? केवल इसलिए कि वामपन्थी इतिहासकार रूपी हिन्दू-विरोधी प्रचारक ऐसा कहते हैं?

रामायण के ऐतिहासिक प्रमाणों की तुलना में ऐसे इतिहासकारों के प्रिय विषयों की प्रामाणिकता की स्थिति भी जाँचनी चाहिए। तभी वास्तविक चित्र और प्रगतिवादी महानुभावों की हिन्दू-विरोधी धूर्तता स्पष्ट होगी। अतएव ध्यान दें कि हमारे आधुनिक, वामपन्थी या सेक्यूलर इतिहासकारों, अर्थात् कथित एमिनेंट हिस्टोरियंस ने अपनी पुस्तकों में बार-बार कुछ बातें दुहराई हैं। दुहरा-दुहरा कर उन्हें ऐतिहासिक तथ्य के रूप में ऐसा प्रतिष्ठित कर दिया है कि हमारे नेता, लेखक, सम्पादक और सॉलिसिटर साहबान भी उसे सहज सत्य के रूप में मानते हैं। जैसे : आठवीं शताब्दी से अरब या मध्य एशिया के आक्रमणकारी केवल धन के लोभ से भारत पर आक्रमण करने आते रहे थे; बाबर कलावंत था; अकबर उदार था; गुरु गोविन्द सिंह या शिवाजी लुटेरे थे; औरंगजेब जिन्दा पीर था; हिन्दू राजा भी मन्दिर तोड़ा करते थे; अँग्रेज विकसित थे; भारतीय पिछड़े थे; ब्राह्मणों के उत्पीड़न से त्रस्त होकर यहाँ शूद्र इस्लाम में धर्मांतरित हुए; नेहरू महान द्रष्टा थे; पटेल मुस्लिम-विरोधी थे; भारत की संस्कृति मिश्रित है; लोकतन्त्र और समानता के विचार भारतवासियों ने यूरोप से सीखे; सोवियत संघ या लाल चीन में किसानों-मजदूरों की सत्ता थी; इस्लाम समता का दर्शन है; आदि। किन्तु ऐसी बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक प्रस्थापनाओं के लिए हमारे स्वनामधन्य वामपन्थी इतिहासकारों ने कितने और किस तरह के प्रमाण दिए हैं?

उनकी पुस्तकों में तनिक गहराई से ढूँढ़िए, बल्कि उनका सारा लेखन छान मारिए तो दंग रह जाना पड़ेगा। कहीं किसी पुरानी साहित्यिक कृति में लिखी गई एक

पंक्ति, कहीं-कहीं केवल एक शब्द मात्र, कहीं किसी राजकीय दस्तावेज का एक आदेश, कोई एक फरमान, कहीं केवल किसी अन्य लेखक का किया दावा और बस! इतने पर ही हमारे एमिनेंट इतिहासकारों ने ठसक से पूरी की पूरी प्रस्थापना बनाई, कई दशकों से प्रचारित की और मनवाई है! कोई भी पाठक स्वयं इसकी परीक्षा कर सकते हैं। तब तुलना करें कि रामायण या महाभारत के विवरणों के समर्थन और साक्ष्य में कितने प्रत्यक्ष, साहित्यिक, लोकाख्यानिक, पुरातात्विक, पारंपरिक, परस्पर पूरक तथ्य व विवरण मिलते हैं। सच तो यह है कि विश्व के किसी भी आख्यान में वर्णित स्थानों, पात्रों, विवरणों, घटनाओं के इतने तरह के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं जितने रामायण और महाभारत के लिए हैं। इसीलिए, हमारे वही इतिहासकार जो बीच-बीच में इस या उस चीज का हमसे प्रमाण माँगते हैं, स्वयं प्रमाणों से इतना डरते हैं कि प्रत्येक वैसे शोध को छल-प्रपंच और सत्ता के दुरुपयोग से अविलम्ब बन्द करवाते हैं। सरस्वती शोध परियोजना को क्यों बन्द कराया गया? अयोध्या में खुदाई का विरोध क्यों किया गया? कुरुक्षेत्र या मथुरा या द्वारिका में पुरातात्विक खोज-बीन क्यों रोकी दी गई? केवल इसलिए क्योंकि उसे न रोकने पर ऐतिहासिक प्रमाणों का इतना बड़ा भण्डार एकत्र हो सकता है, जो हिन्दू-विरोधी मानसिकता से ग्रस्त वामपन्थी, नेता और प्रचारकों के गर्हित उद्देश्यों के लिए भारी अवरोध बन कर खड़ा हो जाएगा।

इसलिए बात रामायण, श्रीराम या रामसेतु के लिए साक्ष्य जुटाने या प्रस्तुत करने की है ही नहीं। मूल बात है एक धूर्त, कटिबद्ध, हिन्दू-विरोधी राजनीतिक, वैचारिक रणनीति का कठोर प्रतिकार करने की। प्रश्न भारतीय या हिन्दू समाज के सभ्यतागत, स्थाई बैरियों को सन्तुष्ट करने का नहीं, उन्हें मुँहतोड़ उत्तर देने, उनका दोहरापन, पाखण्ड और वास्तविक रूप उजागर करने का है। ऐसा करने के लिए हिन्दू जनता में आत्मबल अब भी है। दुर्भाग्य से उसके प्रतिनिधि ही झिझक जाते हैं। इसी का लाभ शत्रु उठाते हैं और उलटे हमें अपदस्थ करने का दुस्साहस करते हैं। रामसेतु परियोजना प्रसंग पर हुए विवाद और श्रीराम सम्बन्धी श्रद्धा-विश्वास पर वैचारिक आक्रमण आदि को इसी रूप में लेना चाहिए। हमारे पश्चिम-परस्त बुद्धिजीवी, विशेषकर मार्क्सवादी, प्रगतिशील महानुभाव, भारतीय सभ्यता-संस्कृति से न केवल दूर हैं, बल्कि उन्हें इससे भारी दुराव भी है। वे तरह-तरह की यूरोपियन दृष्टि के दास रहे हैं। इसीलिए धड़ल्ले से कह देते हैं कि भारतीयों में इतिहास-बोध नहीं है। उनकी देखा-देखी कई दूसरे भी बिना सोचे-समझे वही सब दुहराने लगते हैं। किन्तु सच यह है हिन्दुओं की इतिहास-दृष्टि भिन्न और सामंजस्यपूर्ण है। किन्तु इससे नितान्त अनजान रहते अथवा जानते-बूझते उसका तिरस्कार करते हुए वाममार्गियों ने हिन्दू सभ्यता-संस्कृति का सदैव उपहास करने का काम किया है। अभी भी यही हो रहा है। वे लगभग सभी विषयों में पश्चिमी वैचारिकता की दासता निभा रहे हैं। इसलिए उनका इतिहास-बोध भी अपने देश का न होकर पश्चिम का अनुगामी है। यहाँ ध्यान

देने की बात है कि पश्चिम का इतिहास-बोध मनुष्य के समूचे समय को हथियाने की, कॉलोनाइज करने की चेष्टा करता है, उसे अपनी अहं-केन्द्रित इमेज में ढालना चाहता है। इसका गम्भीर मूल्यांकन करते हुए निर्मल वर्मा ने लिखा है :

पश्चिम का ऐतिहासिक समय धीरे-धीरे समूची मानव-जाति के समय-बोध को शोषित करने लगता है। यदि आज भारतीय मनीषा इतिहास और अतीत के दो मृत खण्डों में विभाजित दिखाई देती है तो हमें इसका कारण सीधा पश्चिम के उस अहं-केन्द्रित इतिहास-बोध में दिखाई देगा जिसने पिछले दो सौ वर्षों में भारतीय मनुष्य को उसके अतीत और परंपरा से उन्मूलित किया है...

(परम्परा और इतिहास-बोध)

कहने की आवश्यकता नहीं, कि यह भारतीय मनुष्य और कोई नहीं वे बुद्धिजीवी ही हैं जो कभी सरस्वती को काल्पनिक, तो कभी श्रीराम को मिथक बताते हैं या रामसेतु को चुनौती देते हैं। ऐसे सभी प्रसंग हमें यह अवसर देते हैं कि हम अपने बुद्धिजीवी वर्ग की मानसिक दासता तथा हिन्दू विरोधी बौद्धिक दोहरापन को पहचान सकें। साथ ही साथ काल की भारतीय और पश्चिमी अवधारणाओं का, एवं 'हिस्टरी' तथा 'इतिहास' के बीच के मूलभूत अन्तर भी समझें। पश्चिमी साइंस, साइंटिफिक, ऐतिहासिकता रेशनेलिटी की प्रभावी धारणाओं और भारतीय ज्ञान, सत्य और ऋतु की कालजयी धारणाओं के बीच के तुलनात्मक भेद को पहले तथ्यतः समझना भी अनेक कारणों से आवश्यक है। तभी हम यह समझ सकेंगे कि सभी बिन्दुओं पर पश्चिमी कसौटियों, शर्तों को स्वीकार कर माथापच्ची करने लगना निरर्थक ही नहीं, हानिप्रद भी है। केवल हमारे लिए ही नहीं, वरन् विश्व के लिए भी। पश्चिमी समाज के साइंटिफिक टेम्पर, प्रोग्रेस और हिस्टोरिसिज्म में एक आत्म-विनाशी प्रतिज्ञा भी निहित है। अज्ञेय के शब्दों में कहें तो पश्चिम की हिस्टरी "थिंगलियाँ जोड़कर बनाया गया एक कन्था है जिसमें ऐसी कोई 'सार्थकता' या अभिप्राय नहीं हो सकता जो बुद्धि अथवा मानवीय संकल्प के आधार पर परिभाषित किया जा सके।" अभी समय है कि हम अपनी ज्ञान-परम्परा की भूमि पर टिककर देश-काल की संपूर्ण स्थिति और विचार-बिंदुओं की परख करना आरम्भ करें। अन्यथा हो सकता है आनेवाले समय में इसका अवसर ही न बचे।

जी हाँ, देश में बौद्धिक वातावरण जिस दिशा में जा रहा है उससे यह आशंका वृथा नहीं। कुछ समय से रामसेतु को तोड़कर व्यापारिक समुद्री मार्ग बनाने का प्रपंच चल रहा है। इसके लिए मुख्य तर्क यह दिया गया, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय में शपथ-पत्र में कह दिया गया कि राम तो एक मिथकीय चरित्र है। इसलिए रामसेतु तोड़ने में कोई ऐसी बड़ी बात नहीं। यह प्रसंग एक संकेत है कि इस देश में स्वतन्त्रता के छः दशकों में किस गति से बौद्धिक अवनति हुई है।

कृपया विचार करें : जिस देश में जीवन से लेकर मरण तक राम का अवलम्ब

चलता हो। जहाँ नमस्कार सूचक 'जय रामजी की', 'राम-राम' और घृणा-सूचक 'राम! राम!' से लेकर 'रामजी की इच्छा', 'हे राम!' 'राम नाम सत्य' तक जीवन के प्रत्येक दिन हृदय के सभी भाव और उच्छ्वास राम के सहारे व्यक्त होते हैं। सारे समाज में किसी न किसी तरह की राम-धुन आजीवन चलती हो। और यह परम्परा कश्मीर के रामवन से लेकर कन्याकुमारी के रामेश्वरम् तक एक समान, अनादिकाल से स्थापित हो। जहाँ राम से जुड़ेरामाधार, रामनिवास, रामजीवन, रामपुकार, रामउद्गार, रामानंद, सीताराम, रामास्वामी, रामचन्द्रन, रामकृष्णन, शिवरामन आदिसैकड़ों नाम भारत के कोने-कोने में लोग अपनी सन्तानों का रखते हैं। ऐसे देश में गम्भीरतापूर्वक कहना कि राम जैसा कुछ कभी न था, कि यह सब मिथक है, यह घातक सेक्युलर फण्डामेंटलिज्म के अतिरिक्त और क्या है जिस पर निर्मलजी ने दुःख व्यक्त किया था?

यह कहना पर्याप्त नहीं कि श्रीराम को मिथक बताकर हिन्दू भावना को आहत किया गया है। वैसे भी हिन्दुओं की भावना सामी मजहबों की तरह इतनी दुर्बल या अंधी नहीं जो बात-बात में आहत हो जाती हो। यहाँ ईसाई मिशनरी पिछले दो सौ वर्षों से शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, हनुमान आदि के लिए एक से एक कुत्सित बातें कहते रहे हैं। किन्तु इस पर पण्डित हिन्दू और किसान, पढ़-अपढ़ सभी हँसते रहे हैं। अब वही कुत्सा हिन्दू परिवारों में जन्मे, किन्तु कुशिक्षा पाए सेक्यूलर, वामपन्थी बुद्धिजीवी, अफसर नेता, पत्रकार कर रहे हैं, तो यह केवल हिन्दू आस्था का अपमान नहीं। बात अधिक गम्भीर और गहरी है, जिस पर विचार करना चाहिए।

उस शपथ-पत्र पर 'हाय-राम!' मचने के बाद कुछ लोग उन दोषियों को ढूँढ़ने लगे जिन्होंने सरकार के संस्कृति मन्त्रालय या भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण को दिग्भ्रमित किया। यदि सचमुच दोषियों को ढूँढ़ना चाहते हैं तो उन इतिहास पुस्तकों को पलटें जो तीस-पैंतीस वर्षों से स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई जा रही हैं। मार्क्सवादी इतिहासकारों, जो आपस में एक-दूसरे को 'एमिनेंट हिस्टोरियंस' कहते नहीं अघाते, की वह पुस्तकें जो केन्द्रीय अकादमियों, विश्वविद्यालयों पर राजनीतिक कब्जे के माध्यम से बच्चे-बच्चे तक पहुँचा दी गईं। जिन्हें अनजान विद्यार्थी और शिक्षक विद्वत् लेखन मानकर रटते-रटाते रहे हैं। जिन्हें घोटना उन युवाओं की विवशता भी है जो ऊँची सरकारी नौकरियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठते हैं। हिन्दू-विरोधी पुस्तकें लिखने, उन्हें कोर्स में लगवाने से लेकर सेवा आयोगों की कुर्सियाँ हथियाने, और वहाँ अफसर उम्मीदवारों का चयन करने तक सेक्यूलर-वामपन्थी गिरोहों का कब्जा रहा है। अतः परीक्षा में लिखने और इण्टरव्यू में उत्तर देने के लिए वही बातें बोलना अनिवार्य है, अन्यथा...। वामपन्थी प्रोफेसरों के इन गिरोहों को प्रसिद्ध समाजशास्त्री आशीष नन्दी ने सटीक नाम दिया है, 'एकेडेमिक गैंगस्टर्स!' राम, कृष्ण और पूरी हिन्दू सभ्यता को खारिज करनेवाले, और इस पर कालिख पोतने के असली दोषी यही हैं।

आज यदि कोई अफसर, सॉलिसिटर, पत्रकार या नेता रामायण को कपोल-कल्पना

कहता है, तो इसके मूल अपराधी वे एकेडेमिक गैंगस्टर्स हैं जिन्होंने सरकारी तन्त्र का दुरुपयोग कर देश की कम से कम दो पीढ़ियों को बौद्धिक, आध्यात्मिक रूप से आत्महीन और पंगु बनाया। कुछ सेक्यूलर अफसर, पत्रकार और राजनीतिक कार्यकर्तागण (एक्टिविस्ट) जिस उत्साह व रति-प्रवृत्ति से हिन्दू धर्म व सभ्यता पर नियमित आक्रमण करते हैं, वह कट्टर ईसाई मिशनरियों को भी लजाने वाला है। यह सब उन्होंने कहाँ से सीखा? स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक पढ़ाई जाने वाली इतिहास, राजनीति, साहित्य की पाठ्य-पुस्तकें पलटें। जो बातें पुरातत्त्व सर्वेक्षण के अभागे अफसर ने शपथपत्र में लिख डालीं, वही हमारे एमिनेंट इतिहासकारों अथवा एकेडेमिक गैंगस्टर्स ने लिख-लिख कर दशकों से प्रचारित की हैं जिसे भावी अफसरों, पत्रकारों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने समय के साथ आत्मसात कर लिया। तब मूल दोषी कौन है?

सेक्यूलर-वामपन्थी इतिहासकारों की इतिहास-दृष्टि भिन्न है तथा उन्हें अपनी व्याख्या देने का अधिकार हैयह तर्क दुर्बल या धूर्ततापूर्ण हैं। उस प्रपंच का अंग जिसके अन्तर्गत शिक्षा-संस्कृति को व्यवस्थित रूप से भ्रष्ट किया गया। भिन्न दृष्टि का तर्क तब मान्य होता, जब उसमें सुसंगतता होती। यदि इतिहास के प्रति किसी की भिन्न समझ ईमानदार हो, तो वह एक तरह के सभी मामलों में झलकेगी। किन्तु बार-बार देखा गया है कि उन्हीं इतिहासकारों की सम्पूर्ण तर्कप्रणाली बदल जाती है यदि प्रसंग, महापुरुष या ग्रन्थ इस्लाम संबंधित हो। न केवल, इतिहास वरन् वर्तमान राजनीतिक विषयों पर भी। इस दोहरेपन को अब अनेक वैसे टिप्पणीकार भी मानने लगे हैं जिन्हें हिन्दू धर्म या दृष्टि से कोई लगाव नहीं है।

किन्तु एकेडेमिक गैंगस्टर्स के अन्य विचारों को छोड़ अभी इतिहास प्रमाण और श्रीराम तक ही सीमित रहें। क्या वास्तव में उनके पास इतिहास प्रस्तुत करने का कोई भिन्न मानदण्ड हैअथवा वे इतिहासकार का भेस धरे राजनीतिकर्मी मात्र हैं? उन चार-छह बड़े मार्क्सवादी सेक्यूलर इतिहासकारों के लेखन, भाषण पर सरसरी नजर डालें। कुछ प्रस्थापनाएँ उनमें बार-बार मिलेंगी। उन प्रस्थापनाओं के पक्ष में दिए गए ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान दें, और फिर उनकी संख्या, स्रोत और गुरुता की तुलना उन प्रमाणों से करें जो रामायण, महाभारत के विवरणों के पक्ष में उपलब्ध हैं। तुरत स्पष्ट हो जाएगा कि जहाँ एक ओर किसी बात के पक्ष में सौ गुने वजन के असंख्य प्रमाणों को भी मिथक कहा जाता है, वहीं किसी अन्य बात के पक्ष में कहीं लिखी हुई मात्र एक पंक्ति को पक्का प्रमाण मान लिया जाता हैवह भी जबकि उसके विपरीत अनेक तथ्य उपलब्ध हों तब भी।

उदाहरण लें। सेक्यूलर-वामपन्थी इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों, भाषणों में निरन्तर दुहराया है कि इस्लामी शासक ही नहीं, हिन्दू राजा भी मन्दिर तोड़ा करते थे। कि यह तो 'पुरानी परम्परा' थी और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने कुछ नया नहीं किया। और इस बात की पुष्टि में ये इतिहासकार क्या प्रमाण देते हैं? केवल कल्हण की एक

पंक्ति, वह भी पूरी बात छिपा कर अधूरी, अर्थात् झूठी! इसी तरह, उनकी दूसरी प्रिय प्रस्थापना है कि मुहम्मद गोरी या गजनवी ने धन के लोभ से भारत पर आक्रमण किया था और उनमें कोई इस्लामी, जिहादी भावना जैसी चीज न थी। अब इस बात के लिए उनके दिए प्रमाण ढूँढ़ें तो पता चलता है कि कोई प्रमाण देने के बदले अधिकांशतः केवल घोषणा और कठदलीली की गई है। वस्तुतः पिछले हजार वर्ष के भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर मार्क्सवादी इतिहासकार बार-बार बोलते हैं। किन्तु उसके लिए प्रस्तुत दलीलों की तुलना रामसेतु के प्रचलित आख्यान के पक्ष में मिलनेवाले प्रमाणों से करें। तब स्पष्ट होगा कि ऐतिहासिक प्रमाण की भंगिमा केवल ढोंग है। सेक्यूलर इतिहासकारों ने ऐसा घोर दोहरापन अपनाया है कि उनकी डिठाई पर दंग रह जाना पड़ता है।

दुनिया में मानक विद्वत्-लेखन में इतिहास के स्वीकार्य स्रोतों पर एकमतता है। उसमें प्रत्यक्षदर्शी विवरण, समकालीन और परवर्ती दस्तावेज, पुरातात्विक चिह्न, शिला-लेख, भित्ति-चित्र, शास्त्रीय ग्रन्थ, साहित्य, कला-कृतियाँ, प्रचलित लोक-आख्यान, स्थानों के नाम, स्मारकों से जुड़ी किंवदन्तियाँ आदि सभी कुछ को साक्ष्य माना जाता है। विशेषकर यदि उपर्युक्त में से कोई साक्ष्य-स्रोत दूसरे साक्ष्य-स्रोत की बात की पुष्टि करता हो, तब तो उस बात की प्रामाणिकता में कोई सन्देह ही नहीं रहता। इस प्रकार, यदि इतिहासलेखन के स्रोत, प्रमाण के मानक सिद्धान्त को ही आधार बनाएँ तो रामायण अथवा महाभारत के विवरणों के लिए भारत की धरती पर सहस्रों वर्षों से इतने प्रकार के भौतिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, भौगोलिक, लोक-पारंपरिक प्रमाण उपलब्ध हैं जितने विश्व के किसी अन्य ऐतिहासिक आख्यान के लिए नहीं मिलते। किन्तु यही रामायण हमारे सेक्यूलर इतिहासकारों के लिए मिथक है! जबकि 'औरंगजेब जिंदा फकीर था' और 'सोवियत संघ में मजदूरों का राज था', ऐसी बातें बिना किसी प्रमाण की परवाह किए केवल प्रचार के बल पर ऐतिहासिक तथ्य के रूप में पढ़ाई जाती हैं!

क्या इससे स्पष्ट नहीं कि श्रीराम या रामसेतु के विरुद्ध ऐतिहासिक प्रमाण असली बात ही नहीं? जिन्हें सन्देह हो, वह रामायण के बारे में सीधे हमारे सेक्यूलर-वामपन्थी इतिहासकारों की एक छोटी-सी पुस्तिका पढ़ लें। *इतिहास का राजनीतिक दुरुपयोग* (1989) नामक यह प्रसिद्ध पुस्तिका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग द्वारा प्रकाशित की गई थी। चार पृष्ठ की इस पुस्तिका के लेखक रोमिला थापर, बिपनचन्द्र, हरबंस मुखिया, के. एन. पणिक्कर, मृदुला मुखर्जी आदि 25 बड़े-छोटे सेक्यूलर-वामपन्थी इतिहासकार थे। कम्युनिस्ट पार्टी प्रेस से छपी यह पुस्तिका पूरे देश में खूब प्रसारित की गई थी। इसमें श्रीराम की ऐतिहासिकता पर प्रश्न उठाते हुए अनेक बातें थीं। इसका परीक्षण लेश-पात्र सन्देह नहीं रहने देता कि यह लोग इतिहासकार नहीं, राजनीतिक प्रचारक हैं। ऐसे प्रचारक जो भारतीय संस्कृति को

निर्मूल करने के लिए किसी हथकण्डे से नहीं सकुचाते।

वह पुस्तिका अयोध्या आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गयी थी। उसमें निम्नलिखित दावे किए गए : (1) इसका कोई प्रमाण नहीं कि राम हुए भी थे या नहीं; (2) वर्तमान अयोध्या *रामायण वाली अयोध्या नहीं है*; (3) अयोध्या राम की जन्मभूमि है, इसका कोई प्रमाण नहीं; (4) अयोध्या का पहले कोई महत्त्व नहीं था, बाद में इसे महत्ता प्रदान की गई; (5) अयोध्या अनेक धर्मों का पावन स्थान रहा है, राम भक्त सम्प्रदाय के लिए इसका पावन बन जाना केवल पिछली चार सदी की बात है; (6) अयोध्या के हिन्दू तीर्थ के रूप में विकसित होने में मुस्लिम नवाबों के सहयोग-संरक्षण ने बड़ी भूमिका निभाई थी; (7) अयोध्या पर कोई एक धार्मिक समुदाय अपना एकछत्र पावन-स्थल होने का अधिकार नहीं कर सकता, आदि।

पच्चीस एमिनेंट इतिहासकारों द्वारा लिखी गई उक्त पुस्तिका प्रमाणों की दृष्टि से कितनी दयनीय थी, इसका इसी से अनुमान लगा लें कि आज उन पच्चीस महानुभावों में कोई भी उसका उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार नहीं! क्यों? क्योंकि प्रकाशन के बाद तुरत ही उसका खोखलापन उजागर हो गया था। शिमला विश्वविद्यालय के प्रो. ए. आर. खान ने अपने लेख 'इन द नेम ऑफ 'हिस्टरी' (*इण्डियन एक्सप्रेस, 25 फरवरी 1990*) में पुस्तिका में किए सभी दावों की धज्जियाँ उड़ा दीं। तब यह रहस्य सामने आया कि पुस्तिका लिखनेवाले अवगत थे कि उनके दावे सही नहीं! किन्तु यह प्रकट हो जाने के बाद वे इस बात से ही भाग खड़े हुए कि मूल प्रश्न ऐतिहासिक प्रमाण का है। जबकि पुस्तिका ठीक इसी दावे से आरम्भ हुई थी! यह प्रसंग दिखाता है कि सेक्यूलर इतिहासकारों को इतिहास के प्रमाणों की चिन्ता ही नहीं है। उनका लक्ष्य हिन्दू-विरोध है, चाहे वह जैसे सधे। उनके अपने ही शब्दों में, "चाहे ऐतिहासिक प्रमाण कुछ भी हों।" (हरबंस मुखिया)। रामसेतु पर भी यही हो रहा है।

अतः श्रीराम और रामायण को मिथक कहने का दोषी कौन है, इसे गम्भीरता से पहचानें। ऐसे दावों से और कौन-कौन-सी प्रस्थापनाएँ जुड़ी हुई हैं, कौन-सी देशी-विदेशी शक्तियाँ उनके पीछे हैं, उनका अन्तिम या प्रधान उद्देश्य क्या है, उसके क्या परिणाम हुए और हो रहे हैं, आदि बातों पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो जो चोट हुई है, वह तब तक दुहराई जाती रहेगी जब तक सामी मजहबों के हाथों भारतीय सभ्यता का अन्त नहीं हो जाता। अतएव प्रश्न हिन्दुओं की आस्था का नहीं, सभ्यतागत बैरियों से भारतीय सभ्यता की रक्षा का है। यह समझे बिना हिन्दू नेता और संगठन दिग्भ्रमित रहेंगे।

आज भी खरे हैं तालाब

अनुपम मिश्र *

हमारे देश में पिछले हजारों वर्षों से जल संचयन एवं प्रबंधन की श्रेष्ठ प्रविधि काम में लायी जाती रही है। इसके साधन थे देश के कोने-कोने में, प्रायः हर गाँव में, बिखरे लाखों तालाब। इस देश में लगातार तालाब बनते रहे; उनकी मरम्मत होती रही; इस कार्य में समाज का स्वतः स्फूर्त सहयोग मिलता रहा। हमारे पास तालाब से जुड़ी तकनीक थी और उस तकनीक के जानकार लोग। यदि किसी को पारस मिल जाता या गड़ा खजाना तो वह उसका उपयोग तालाब बनाने, परोपकार के कार्यों में लगाने में करता था। तालाब बनाना सबसे अधिक परोपकार का काम हुआ करता था। तालाब बनवानेवालों को समाज संत बना देता था, उसका नाम सदा याद रखता था। हमारे देश में तालाब के लिए अनेक शब्द थे, उससे जुड़ी समृद्ध शब्द सम्पदा थी। तालाब बनाना एक धार्मिक कृत्य भी था; तालाब से जुड़े धार्मिक कृत्य तो थे ही। तालाब बनने पर जीवंत हो उठता था; उसका विवाह भी कराया जाता था। वर्षा ऋतु में तालाब लबालब भर जाते थे और सालभर वरुण देवता का प्रसाद बाँटा करते थे। तालाबों के चलते भू-जल का स्तर ऊँचा बना रहता था। नदियाँ प्रवाहित होती रहती थीं; वे सदानेरी बनी रहती थीं। कभी-कभार लम्बे समय की अनावृष्टि के चलते पड़नेवाले अकालों के अतिरिक्त अन्न-जल की कमी नहीं होने पाती थी। लेकिन यह स्थिति बनी न रह सकी। पिछले लगभग दो सौ वर्षों में हमने नये तालाब बनाना, लगभग बन्द सा कर दिया। पुराने तालाबों के रख-रखाव की अनदेखी की जाने लगी, नये किस्म की थोड़ी सी पढ़ाई पढ़ गये समाज ने हजारों वर्षों से चली आ रही व्यवस्था को लगभग ध्वस्त ही कर दिया।

गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली के पर्यावरण कक्ष द्वारा आज भी खरे हैं तालाब शीर्षक से एक अत्यन्त बहुमूल्य पुस्तक प्रकाशित हुई है। पुस्तक की एक लाख से अधिक प्रतियाँ हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में अनूदित कराकर विभिन्न संस्थानों, नेशनल बुल ट्रस्ट तथा अन्य प्रकाशकों द्वारा 2004 तक प्रकाशित करायी जा चुकी थीं। मुझे लगता है कि इस पुस्तक की करोड़ों प्रतियाँ छपनी चाहिए तथा इसे विद्यालयों महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में स्थान पाना चाहिए। पुस्तक का आलेख अनुपम मिश्र ने लिखा है तथा शोध एवं संयोजन का कार्य शीना एवं मंजुश्री द्वारा हुआ है। पुस्तक के दो लेख हम इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। **संपादक**

*गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान

पाल के किनारे रखा इतिहास

“अच्छे-अच्छे काम करते जाना,” राजा ने कूड़न किसान से कहा था।

कूड़न बुढ़ान, सरमन और कौराई थे चार भाई। चारों सुबह जल्दी उठकर अपने खेत पर काम करने जाते। दोपहर को कूड़न की बेटी आती, पोटली में खाना लेकर।

एक दिन घर से खेत जाते समय बेटी को एक नुकीले पत्थर से ठोकर लग गई। उसे बहुत गुस्सा आया। उसने अपनी दरांती से उस पत्थर को उखाड़ने की कोशिश की। पर लो, उसकी दरांती तो पत्थर पर पड़ते ही लोहे से सोने में बदल गई। और फिर बदलती जाती हैं इस लम्बे किस्से की घटनाएँ बड़ी तेजी से। पत्थर उठाकर लड़की भागी-भागी खेत पर आती है। अपने पिता और चाचाओं को सब कुछ एक साँस में बता देती है। चारों भाइयों की साँस भी अटक जाती है। जल्दी-जल्दी सब घर लौटते हैं। उन्हें मालूम पड़ चुका है कि उनके हाथ में कोई साधारण पत्थर नहीं है, पारस है। वे लोहे की जिस चीज को छूते हैं, वह सोना बनकर उनकी आँखों में चमक भर देती है।

पर आंखों की यह चमक ज्यादा देर तक नहीं टिक पाती। कूड़न को लगता है कि देर-सबेर राजा तक यह बात पहुँच ही जाएगी और तब पारस छिन जाएगा। तो क्या यह ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि वे खुद जाकर राजा को सब कुछ बता दें।

किस्सा आगे बढ़ता है। फिर जो कुछ घटता है, वह लोहे को नहीं बल्कि समाज को पारस से छुआने का किस्सा बन जाता है।

राजा न पारस लेता है न सोना। सब कुछ कूड़न को वापस देते हुए कहता है : “जाओ इससे अच्छे-अच्छे काम करते जाना, तालाब बनाते जाना।”

यह कहानी सच्ची है, ऐतिहासिक है नहीं मालूम। पर देश के मध्य भाग में एक बहुत बड़े हिस्से में यह इतिहास को अंगूठा दिखाती हुई लोगों के मन में रमी हुई है। यहीं के पाटन नामक क्षेत्र में चार बहुत बड़े तालाब आज भी मिलते हैं और इस कहानी को इतिहास की कसौटी पर कसने वालों को लजाते हैं चारों तालाब इन्हीं चारों भाइयों के नाम पर हैं। बुढ़ागर में बूढ़ा सागर है, मझगवां में सरमन सागर है, कुआंग्राम में कौराई सागर है तथा कुंडम गाँव में कुंडम सागर। सन् 1907 में गजेटियर के माध्यम से इस देश का ‘व्यवस्थित’ इतिहास लिखने घूम रहे अंग्रेज ने भी इस इलाके में कई लोगों से यह किस्सा सुना था और फिर देखा-परखा था इन चार बड़े तालाबों को। तब भी सरमन सागर इतना बड़ा था कि उसके किनारे पर तीन बड़े-बड़े गाँव बसे थे और तीनों गाँव इस तालाब को अपने-अपने नामों से बांट लेते थे। पर वह विशाल ताल तीनों गाँवों को जोड़ता था और सरमन सागर की तरह स्मरण किया जाता था। इतिहास ने सरमन बुढ़ान, कौराई और कूड़न को याद नहीं रखा लेकिन इन लोगों ने तालाब बनाए और इतिहास को उनके किनारे पर रख दिया था।

देश के मध्य भाग में, ठीक हृदय में धड़कने वाला यह किस्सा उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिमचारों तरफ किसी न किसी रूप में फैला हुआ मिल सकता है और इसी के साथ मिलते हैं सैकड़ों हजारों तालाब। इनकी कोई ठीक गिनती नहीं है। इन अनगिनत तालाबों को गिनने वाले नहीं, इन्हें तो बनाने वाले लोग आते रहे और तालाब बनते रहे।

किसी तालाब को राजा ने बनाया तो किसी को रानी ने, किसी को किसी साधारण गृहस्थ ने, विधवा ने बनाया तो किसी को किसी असाधारण साधु-संत ने जिस किसी ने भी तालाब बनाया, वह महाराज या महात्मा ही कहलाया। एक कृतज्ञ समाज तालाब बनाने वालों को अमर बनाता था और लोग भी तालाब बनाकर समाज के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते थे।

समाज और उसके सदस्यों के बीच इस विषय में एक ठीक तालमेल का दौर कोई छोटा दौर नहीं था। एकदम महाभारत और रामायण काल के तालाबों को अभी छोड़ दें तो भी कहा जा सकता है कि कोई पाँचवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक देश के इस कोने से उस कोने तक तालाब बनते ही चले आए थे। कोई एक हजार वर्ष तक अबाध गति से चलती रही इस परंपरा में पन्द्रहवीं सदी के बाद कुछ बाधाएँ आने लगी थीं, पर उस दौर में भी यह धारा पूरी तरह से रुक नहीं पाई, सूख नहीं पाई। समाज ने जिस काम को इतने लंबे समय तक बहुत व्यवस्थित रूप में किया था, उस काम को उथल-पुथल का वह दौर भी पूरी तरह से मिटा नहीं सका। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के अंत तक भी जगह-जगह पर तालाब बन रहे थे।

लेकिन फिर बनाने वाले लोग धीरे-धीरे कम होते गए। गिनने वाले कुछ जरूर आ गए पर जितना बड़ा काम था, उस हिसाब से गिनने वाले बहुत ही कम थे और कमजोर भी। इसलिए ठीक गिनती भी कभी हो नहीं पाई। धीरे-धीरे टुकड़ों में तालाब गिने गए, पर सब टुकड़ों का कुल मेल कभी बिठाया नहीं गया। लेकिन इन टुकड़ों की झिलमिलाहट पूरे समग्र चित्र की चमक दिखा सकती है।

लबालब भरे तालाबों को सूखे आँकड़ों में समेटने की कोशिश किस छोर से शुरू करें? फिर से देश के बीच के भाग में वापस लौटें।

आज के रीवा जिले का जोड़ैरी गाँव है, कोई 2500 की आबादी का, लेकिन इस गाँव में 12 तालाब हैं। इसी के आसपास है ताल मुकेदान, आबादी है बस कोई 1500 की, पर 10 तालाब हैं गाँव में। हर चीज का औसत निकालने वालों के लिए यह छोटा-सा गाँव आज भी 150 लोगों पर एक अच्छे तालाब की सुविधा जुटा रहा है। जिस दौर में ये तालाब बने थे, उस दौर में आबादी और भी कम थी। यानी तब जोर इस बात पर था कि अपने हिस्से में बरसने वाली हरेक बूंद इकट्ठी कर ली जाए और संकट के समय में आसपास के क्षेत्रों में भी उसे बाँट लिया जाए। वरुण देवता का प्रसाद गाँव अपनी अंजुली में भर लेता था।

और जहाँ प्रसाद कम मिलता है? वहाँ तो उसका एक कण, एक बूंद भी भला कैसे बगरने दी जा सकती थी। देश में सबसे कम वर्षा के क्षेत्र जैसे राजस्थान और उसमें भी सबसे सूखे माने जाने वाले थार के रेगिस्तान में बसे हजारों गाँवों के नाम ही तालाब के आधार पर मिलते हैं। गाँवों के नाम के साथ ही जुड़ा है 'सर'। सर यानी तालाब। सर नहीं तो गाँव कहाँ? यहाँ तो आप तालाब गिनने के बदले गाँव ही गिनते जाएँ और फिर इस जोड़ में 2 या 3 का गुणा कर दें।

जहाँ आबादी में गुणा हुआ और शहर बना, वहाँ भी पानी न तो उधार लिया गया, न आज के शहरों की तरह कहीं और से चुरा कर लाया गया। शहरों ने भी गाँवों की तरह ही अपना इंतजाम खुद किया। अन्य शहरों की बात बाद में, एक समय की दिल्ली में कोई 350 छोटे-बड़े तालाबों का जिक्र मिलता है।

गाँव से शहर, शहर से राज्य पर आएँ। फिर रीवा रियासत लौटें। आज के मापदंड से यह पिछड़ा हिस्सा कहलाता है। लेकिन पानी के इंतजाम के हिसाब से देखें तो पिछली सदी में वहाँ सब मिलाकर कोई 5000 तालाब थे।

नीचे दक्षिण के राज्यों को देखें तो आजादी मिलने से कोई सौ बरस पहले तक मद्रास प्रेसिडेंसी में 53,000 तालाब गिने गए थे। वहाँ सन् 1885 में सिर्फ 14 जिलों में कोई 43,000 तालाबों पर काम चल रहा था। इसी तरह मैसूर राज्य में उपेक्षा के ताजे दौर में, सन् 1980 तक में कोई 39,000 तालाब किसी न किसी रूप में लोगों की सेवा कर रहे थे।

इधर-उधर बिखरे ये सारे आँकड़े एक जगह रख कर देखें तो कहा जा सकता है कि इस सदी के प्रारम्भ तक आषाढ़ के पहले दिन से भादों के अंतिम दिन तक कोई 11 से 12 लाख तालाब भर जाते थे और अगले जेठ तक वरुण देवता का कुछ न कुछ प्रसाद बाँटते रहते थे।

क्योंकि लोग अच्छे-अच्छे काम करते जाते थे।

मृगतृष्णा झुटलाते तालाब

देश भर में पानी का काम करने वाला यह माथा रेगिस्तान में मृगतृष्णा से घिर गया था।

सबसे गरम और सबसे सूखा क्षेत्र है यह। साल भर में कोई 3 इंच से 12 इंच पानी बरसता है यहाँ। जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर के कुछ भागों में कभी-कभी पूरे वर्ष में बस इतना ही पानी गिरता है, जितना देश के अन्य भागों में एक दिन में गिर जाता है। सूरज भी यहीं सबसे ज्यादा चमकता है और अपनी पूरी तेजी के साथ। गरमी की ऋतु लगता है, यहीं से देश में प्रवेश करती है और बाकी राज्यों में अपनी हाजिरी लगाकर फिर यहीं रम जाती है। तापमान 50 अंश न छू ले तो मरुभूमि के लोगों के मन में उसका सम्मान कम हो जाता है। भूजल भी यहीं सबसे गहरा है। जल

के अभाव को ही मरुभूमि का स्वभाव माना गया है। लेकिन यहाँ के समाज ने इसे एक अभिशाप की तरह नहीं, बल्कि प्रकृति के एक बड़े खेल के हिस्से की तरह देखा और फिर वह एक कुशल पात्र की तरह सजधज कर उस खेल में शामिल हो गया।

चारों तरफ मृगतृष्णा से घिरी तपती मरुभूमि में जीवन की, एक जीवंत संस्कृति की नींव रखते समय इस समाज ने पानी से संबंधित छोटी से छोटी बात को देखा-परखा होगा। पानी के मामले में हर विपरीत परिस्थिति में उसने जीवन की रीत खोजने का प्रयत्न किया और मृगतृष्णा को झुठलाते हुए जगह-जगह तरह-तरह के प्रबंध किए।

जहाँ तालाब नहीं, पानी नहीं, वहाँ गाँव नहीं। तालाब का काम पहले होगा तब उसको आधार बनाकर गाँव बसेगा। मरुभूमि में सैकड़ों गाँवों का नामकरण वहाँ बने तालाबों से जुड़ा है। बीकानेर जिले की बीकानेर तहसील में 64, कोलायत तहसील में 20 और नोखा क्षेत्र में 123 गाँवों के नाम 'सर' पर आधारित हैं। एक तहसील लूणकरणसर के नाम में ही सर है और यहाँ अन्य 45 गाँवों का नामकरण सर पर है। बचे जिन गाँवों के नाम में सर नहीं है, उन गाँवों में भी तालाब जरूर मिलेंगे। हाँ दो-चार ऐसे भी गाँव हैं, जिनके नाम में सर है लेकिन वहाँ सरोवर नहीं है। गाँव में सरोवर बन जाएएसी इच्छा गाँव के नामकरण के समय रहती ही थी, ठीक उसी तरह जैसे बेटे का नाम रामकुमार, बेटी का नाम पार्वती आदि रखते समय माता-पिता अपनी संतानों में इनके गुणों की कामना कर लेते हैं।

अधिकांश गाँवों में पूरा किया जा चुका कर्तव्य और जहाँ कहीं किसी कारण से पूरा न हो पाए, उसे निकट भविष्य में पूरा होते देखने की कामना ने मरुभूमि के समाज को पानी के मामले में एक पक्के संगठन में ढाल दिया था।

राजस्थान के ग्यारह जिलों जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, पाली, बीकानेर, चुरु, श्रीगंगानगर, झुंझुनूं, जालौर, नागौर और सीकर में मरुस्थल का विस्तार मिलता है। लेकिन मरुस्थल अपने को समेट कर सघन बनता है जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर में। यहीं देश की सबसे कम वर्षा है, सबसे ज्यादा गरमी है, रेत की तेज आँधी है और 'पंख' लगाकर यहाँ से वहाँ उड़ने वाले रेत के विशाल टीले, धोरे हैं। इन तीन जिलों में जल का सबसे ज्यादा अभाव होना चाहिए था। लेकिन मरुभूमि के इन गाँवों का वर्णन करते समय जनगणना की रिपोर्ट को भी भरोसा नहीं हो पाता कि यहाँ शत-प्रतिशत गाँवों में पानी का प्रबंध है। और यह प्रबंध अधिकांश गाँवों में मरुभूमि के समाज ने अपने दम पर किया था। यह इतना मजबूत था कि उपेक्षा के ताजे लंबे दौर के बाद भी यह किसी न किसी रूप में टिका हुआ है।

गजेटियर में जैसलमेर का वर्णन बहुत डरावना है : 'यहाँ एक भी बारामासी नदी नहीं है। भूजल 125 से 240 फुट और कहीं-कहीं तो 400 फुट नीचे है। वर्षा अविश्वसनीय रूप से कम है, सिर्फ 16.4 सेंटीमीटर। पिछले 70 वर्षों के अध्ययन के

अनुसार वर्ष के 365 दिनों में से 355 दिन सूखे गिने गए हैं। यानी 120 दिन की वर्षा ऋतु यहाँ अपने संक्षिप्ततम रूप में केवल 10 दिन के लिए आती है।

लेकिन यह सारा हिसाब-किताब कुछ नए लोगों का है। मरुभूमि के समाज ने संभवतः 10 दिन की वर्षा में करोड़ों बूंदों को देखा और फिर उनको एकत्र करने का काम घर-घर में, गाँव-गाँव में और अपने शहरों तक में किया। इस तपस्या का परिणाम सामने है :

जैसलमेर जिले में आज 515 गाँव हैं। इनमें से 53 गाँव किसी न किसी वजह से उजड़ चुके हैं। आबाद हैं 462। इनमें से सिर्फ एक गाँव को छोड़ हर गाँव में पीने के पानी का प्रबंध है। उजड़ चुके गाँवों तक में यह प्रबंध कायम मिलता है। सरकार के आँकड़ों के अनुसार जैसलमेर के 99.78 प्रतिशत गाँवों में तालाब, कुएँ और अन्य स्रोत हैं। इनमें नल, ट्यूबवेल जैसे नए इंतजाम कम ही हैं। पता नहीं 1.73 प्रतिशत गाँव का क्या अर्थ होता है। पर इस सीमांत जिले के 515 गाँवों में से 'इतने' ही गाँवों में बिजली है। इसका अर्थ है कि बहुत-सी जगह ट्यूबवेल बिजली से नहीं, डीजल तेल से चलते हैं। तेल बाहर दूर से आता है। तेल का टैंकर न आ पाए तो पंप नहीं चलेंगे, पानी नहीं मिलेगा। सब कुछ ठीक-ठीक चलता रहा तो आगे-पीछे ट्यूबवेल से जलस्तर घटेगा ही। उसे जहाँ के तहाँ थामने का कोई तरीका अभी तो है नहीं।

एक बार फिर दुहरा लें कि मरुभूमि के सबसे विकट माने गए इस क्षेत्र में 99.78 प्रतिशत गाँवों में पानी का प्रबंध है और अपने दम पर है। इसी के साथ उन सुविधाओं को देखें जिन्हें जुटाना नए समाज की नई संस्थाओं, मुख्यतः सरकार की जिम्मेदारी मानी जाती है : पक्की सड़कों से अभी तक केवल 19 प्रतिशत गाँव जुड़ पाए हैं, डाक आदि की सुविधा 30 प्रतिशत तक फैल पाई है। चिकित्सा आदि की देखरेख 9 प्रतिशत तक पहुँच सकी है। शिक्षा सुविधा इन सबकी तुलना में थोड़ी बेहतर है 50 प्रतिशत गाँवों में। फिर से पानी पर आएँ 515 गाँवों में 675 कुएँ और तालाब हैं। इसमें तालाबों की संख्या 294 है।

जिसे नए लोगों ने निराशा का क्षेत्र माना वहाँ सीमा के छोर पर, पाकिस्तान से थोड़ा पहले आसूताल यानी आस का ताल है। जहाँ तापमान 50 अंश छू लेता है वहाँ सितलाई यानी शीतल तलाई है और जहाँ बादल सबसे ज्यादा 'धोखा' देते हैं वहाँ बदरासर भी है। लेकिन ऐसी बात नहीं है कि मरुभूमि में पानी का कष्ट नहीं रहा है। लेकिन यहाँ समाज ने उस कष्ट का रोना नहीं रोया। उसने इस कष्ट को कुछ सरल बना लेने की आस रखी और उस आस के आधार पर अपने को इस तरह के संगठन में ढाल लिया कि एक तरफ पानी की हर बूँद का संग्रह किया और दूसरी तरफ उसका उपयोग खूब किफायत और समझदारी से किया।

संग्रह और किफायत के इस स्वभाव को न समझ पाने वाले गजेटियर और जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उस राज और समाज को यह क्षेत्र 'वीरान, वीभत्स,

स्फूर्तिहीन और जीवनहीन' दिखता है। लेकिन गजेटियर में यह सब लिख जाने वाला भी जब घड़सीसर पहुँचा है तो 'वह भूल जाता है कि वह मरुभूमि की यात्रा पर है।'

कागज में, पर्यटन के नक्शों में जितना बड़ा शहर जैसलमेर है, लगभग उतना ही बड़ा तालाब घड़सीसर है। कागज की तरह मरुभूमि में भी ये एक दूसरे से सटे खड़े हैं बिना घड़सीसर के जैसलमेर नहीं होता। लगभग 800 बरस पुराने इस शहर के कोई 700 बरस, उसका एक-एक दिन घड़सीसर की एक-एक बूँद से जुड़ा रहा है।

रेत का एक विशाल टीला सामने खड़ा है। पास पहुँचने पर भी समझ नहीं आएगा कि यह टीला नहीं, घड़सीसर की ऊँची-पूरी, लंबी-चौड़ी पाल है। जरा और आगे बढ़ें तो दो बुर्ज और पत्थर पर सुन्दर नक्काशी के पाँच झरोखों और दो छोटी और एक बड़ी पोल का प्रवेश द्वार सिर उठाए खड़ा दिखेगा। बड़ी और छोटी पोलों के सामने नीला आकाश झलकता है। जैसे-जैसे कदम आगे बढ़ते जाते हैं, प्रवेश द्वार से दिखने वाली झलक में नए-नए दृश्य जुड़ते जाते हैं। यहाँ तक पहुँच कर समझ में आएगा कि पोल से जो नीला आकाश दिख रहा था, वह तो सामने फैला नीला पानी है। फिर दाईं-बाईं तरफ सुन्दर पक्के घाट, मंदिर, पठियाल, बारादरी, अनेक स्तंभों से सजे बरामदे, कमरे तथा और न जाने क्या-क्या जुड़ जाता है। हर क्षण बदलने वाले दृश्य पर जब तालाब के पास पहुँच कर विराम लगता है, तब आँखें सामने दिख रहे सुंदर दृश्य पर कहीं एक जगह टिक नहीं पातीं। हर क्षण पुललियाँ घूम-घूम कर उस विचित्र दृश्य को नाप लेना चाहती हैं।

पर आँखें इसे नाप नहीं पातीं। तीन मील लंबे और कोई एक मील चौड़े आगर वाले इस तालाब का आगौर 120 वर्गमील क्षेत्र में फैला हुआ है। इसे जैसलमेर के राजा महारावल घड़सी ने विक्रम संवत् 1391 में यानी सन् 1335 में बनाया था। दूसरे राजा तालाब बनवाया करते थे, लेकिन घड़सी ने तो इसे खुद बनाया था। महारावल रोज ऊँचे किले से उतर कर यहाँ आते और खुदाई, भराई आदि हरेक काम की देखरेख करते। यों वह दौर जैसलमेर राज के लिए भारी उथल-पुथल का दौर था। भाटी वंश गद्दी की छीनाझपटी के लिए भीतरी कलह, षड्यंत्र और संघर्ष से गुजर रहा था। मामा अपने भानजे पर घात लगाकर आक्रमण कर रहा था, सगे भाई को देश निकाला दिया जा रहा था तो कहीं किसी के प्याले में जहर घोला जा रहा था।

राजवंश में आपसी कलह तो थी ही, उधर राज और शहर जैसलमेर भी चाहे जब देशी-विदेशी हमलावरों से घिर जाता था और जब-तब पुरुष वीर गति को प्राप्त होते और स्त्रियाँ जौहर की ज्वाला में अपने को स्वाहा कर देतीं।

ऐसे धधकते दौर में खुद घड़सी ने राठौरों की सेना की मदद से जैसलमेर पर अधिकार किया था। इतिहास की किताबों में घड़सी का काल जय-पराजय, वैभव-पराभव, मौत के घाट और समर सागर जैसे शब्दों से भरा पड़ा है।

तब भी यह सागर बन रहा था। वर्षों की इस योजना पर काम करने के लिए घड़सी ने अपार धीरज और अपार साधन जुटाए और फिर इसकी सबसे बड़ी कीमत भी चुकाई थी। पाल बन रही थी, महारावल पाल पर खड़े होकर सारा काम देख रहे थे। राज परिवार में चल रहे भीतरी षड्यंत्र ने पाल पर खड़े घड़सी पर घातक हमला किया। राजा की चिता पर रानी का सती हो जाना उस समय का चलन था। लेकिन रानी विमला सती नहीं हुई। राजा का सपना रानी ने पूरा किया।

रेत के इस सपने में दो रंग हैं। नीला रंग है पानी का और पीला रंग है तीन-चार मील के तालाब की कोई आधी गोलाई में बने घाट, मंदिरों, बुर्ज और बारादरी का। लेकिन यह सपना दिन में दो बार बस केवल एक ही रंग में रंगा दिखता है। उगते और डूबते समय सूरज घड़सीसर में मन-भर पिघला सोना उड़ेल देता है। मन-भर यानी माप-तोल वाला मन नहीं, सूरज का मन भर जाए इतना।

लोगों ने भी घड़सीसर में अपने-अपने सामर्थ्य से सोना डाला था। तालाब राजा का था पर प्रजा उसे सँवारती, सजाती चली गई। पहले दौर में बने मंदिर, घाट और जलमहल का विस्तार होता गया। जिसे जब भी जो कुछ अच्छा सूझा, उसे उसने घड़सीसर में न्यौछावर कर दिया। घड़सीसर राजा-प्रजा की उस जुगलबंदी में एक अद्भुत गीत बन गया था।

एक समय घाट पर पाठशालाएँ भी बनीं। इनमें शहर और आसपास के गाँवों के छात्र आकर रहते थे और वहीं गुरु से ज्ञान पाते थे। पाल पर एक तरफ छोटी-छोटी रसोइयाँ और कमरे भी हैं। दरबार में, कचहरी में जिनका कोई काम अटकता, वे गाँवों से आकर यहीं डेरा जमाते। नीलकंठ और गिरधारी के मंदिर बने। यज्ञशाला बनी। जमालशाह पीर की चौकी बनी। सब एक घाट पर। काम-धंधे के कारण मरुभूमि छोड़कर देश में कहीं और जा बसे परिवारों का मन भी घड़सीसर में अटका रहता। इसी क्षेत्र से मध्य प्रदेश के जबलपुर में जाकर रहने लगे सेठ गोविंददास के पुरखों ने यहाँ लौटकर पठसाल पर एक भव्य मंदिर बनवाया था।

पानी तो शहर-भर का यहीं से जाता था। यों तो दिन-भर यहाँ से पानी भरा जाता लेकिन सुबह और शाम तो सैकड़ों पनिहारियों का मेला लगता। यह दृश्य शहर में नल आने से पहले तक रहा है। सन् 1919 में घड़सीसर पर उम्मेदसिंहजी महेता की एक गजल ऐसे दृश्यों का बहुत सुंदर वर्णन करती है। भादों की कजली-तीज के मेले पर सारा शहर सज-धज कर घड़सीसर आ जाता। सिर्फ नीले और पीले रंग के इस तालाब में तब प्रकृति के सब रंग छिटक जाते।

घड़सीसर से लोगों का प्रेम एकतरफा नहीं था। लोग घड़सीसर आते और घड़सीसर भी लोगों तक जाता था और उनके मन में बस जाता। दूर सिंध में रहने वाली टीलों नामक गणिका के मन ने संभवतः ऐसे ही किसी क्षण में कुछ निर्णय ले लिए थे।

तालाब पर मंदिर, घाट-पाट सभी कुछ था। ठाट में कोई कमी नहीं थी। फिर भी टीलों को लगा कि इतने सुनहरे सरोवर का एक सुनहरा प्रवेश द्वार भी होना चाहिए। टीलों ने घड़सीसर के पश्चिमी घाट पर 'पोल' यानी प्रवेश द्वार बनाना तय कर लिया। पत्थर पर बारीक नक्काशी वाले सुंदर झरोखों से युक्त विशाल द्वार अभी पूरा हो ही रहा था कि कुछ लोगों ने महाराज के कान भरे, "क्या आप एक गणिका द्वारा बनाए गए प्रवेश द्वार से घड़सीसर में प्रवेश किया करेंगे?" विवाद शुरू हो गया। उधर द्वार पर काम चलता रहा। एक दिन राजा ने इसे गिराने का फैसला ले लिया। टीलों को खबर लगी। रातों-रात टीलों ने प्रवेश द्वार की सबसे ऊँची-मंजिल में मंदिर बनवा दिया। महाराज ने अपना निर्णय बदला। तब से पूरा शहर इसी सुन्दर पोल से तालाब में प्रवेश करता है और बड़े जतन से इसे टीलों के नाम से ही याद रखे है।

टीलों की पोल के ठीक सामने तालाब की दूसरी तरफ परकोटेनुमा एक गोल बुर्ज है। तालाबों के बाहर तो अमराई, बगीचे आदि होते ही हैं पर इस बुर्ज में तालाब के भीतर बगीची बनी है, जिसमें लोग गोठ करने, यानी आनंद-मंगल मनाने आते रहते थे। इसी के साथ पूरब में एक और बड़ा गोल परकोटा है। इसमें तालाब की रक्षा करने वाली फौज की टुकड़ी रहती थी। देशी विदेशी शत्रुओं से घिरा राज पूरी आबादी को पानी देने वाले इस तालाब की सुरक्षा का भी पक्का प्रबंध रखता था।

मरुभूमि में पानी कितना भी कम बरसता हो, घड़सीसर का आगौर अपने मूलरूप में इतना बड़ा था कि वह वहाँ की एक-एक बूंद को समेट कर तालाब को लबालब भर देता था। तब तालाब की रखवाली फौज की टुकड़ी के हाथ से निकल कर नेष्टा के हाथ में आ जाती। नेष्टा चलता और इतने विशाल तालाब को तोड़ सकने वाले अतिरिक्त पानी को बाहर बहाने लगता। लेकिन यह 'बहाना' भी बहुत विचित्र था। जो लोग एक-एक बूंद एकत्र कर घड़सीसर भरना जानते थे, वे उसके अतिरिक्त पानी को केवल पानी नहीं जलराशि मानते थे। नेष्टा से निकला पानी आगे एक और तालाब में जमा कर लिया जाता था। नेष्टा तब भी नहीं रुकता तो इस तालाब का नेष्टा भी चलने लगता। फिर उससे भी एक और तालाब भर जाता। यह सिलसिला, आसानी से भरोसा नहीं होगा, पूरे नौ तालाबों तक चलता रहता। नौताल, गोविंदसर, जोशीसर, गुलाबसर, भाटियासर, सूदासर, मोहतासर, रतनसर और फिर किसनघाट। यहाँ तक पहुँचने पर भी पानी बचता तो किसनघाट के बाद उसे कई वेरियों में यानी छोटे-छोटे कुएँनुमा कुंडों में भर कर रख लिया जाता। पानी की एक-एक बूंद जैसे शब्द और वाक्य घड़सीसर से किसनघाट तक के सात मील लंबे क्षेत्र में अपना ठीक अर्थ पाते थे।

लेकिन आज जिनके हाथ में जैसलमेर है, राज है, वे घड़सीसर का ही अर्थ भूल चले हैं तो उसके नेष्टा से जुड़े नौ तालाबों की याद उन्हें भला कैसे रहेगी! घड़सीसर के आगौर में वायुसेना का हवाई अड्डा बन गया है। इसलिए आगौर के इस हिस्से

का पानी अब तालाब की ओर न आकर कहीं और बह जाता है। नेष्टा और उसके रास्ते में पड़ने वाले नौ तालाबों के आसपास भी बेतरतीब बढ़ते शहर के मकान, नई गृह निर्माण समितियाँ, और तो और पानी का ही नया काम करने वाला इंदिरा नहर प्राधिकरण का दफ्तर, उसमें काम करने वालों की कालोनी बन गई है।

घाट, पठसाल, पाठशालाएँ, रसोई, बरामदे, मंदिर ठीक सार-सँभाल के अभाव में धीरे-धीरे टूट चले हैं। आज शहर ल्हास का वह खेल भी नहीं खेलता, जिसमें राजा-प्रजा सब मिलकर घड़सीसर की सफाई करते थे, साद निकालते थे। तालाब के किनारे स्थापित पत्थर का जलस्तंभ भी थोड़ा-सा हिलकर एक तरफ झुक गया है। रखवाली करने वाली फौज की टुकड़ी के बुर्ज के पत्थर भी ढह गए हैं।

फिर भी 668 बरस पुराना घड़सीसर मरा नहीं है। बनाने वालों ने उसे समय के थपेड़े सह जाने लायक मजबूती दी थी। रेत की आधियों के बीच अपने तालाबों की उम्दा सार-सँभाल की परंपरा डालने वालों को शायद इसका अंदाज नहीं था कि कभी उपेक्षा की आँधी भी चलेगी। लेकिन इस आँधी को भी घड़सीसर और उसे आज भी चाहने वाले लोग बहुत धीरज के साथ सह रहे हैं। तालाब पर पहरा देने वाली फौजी टुकड़ी आज भले ही नहीं हो, लोगों के मन का पहरा आज भी है।

पहली किरन के साथ मंदिरों की घंटियाँ बजती हैं। दिन भर लोग घाटों पर आते-जाते हैं। कुछ लोग यहाँ घंटों मौन बैठे-बैठे घड़सीसर को निहारते रहते हैं तो कुछ गीत गाते और रावण हत्था, एक तरह की सारंगी बजाते हुए मिलते हैं।

पनिहारिनें आज भी घाटों पर आती हैं। पानी ऊँटगाड़ियों से भी जाता है और दिन में कई बार ऐसी टैंकर गाड़ियाँ भी यहाँ देखने मिल जाती हैं, जिनमें घड़सीसर से पानी भरने के लिए डीजल पंप तक लगा रहता है।

घड़सीसर आज भी पानी दे रहा है। और इसीलिए सूरज आज भी उगते और डूबते समय घड़सीसर में मन-भर सोना उड़ेल जाता है।

घड़सीसर मानक बन चुका था। उसके बाद किसी और तालाब को बनाना बहुत कठिन रहा होगा। पर जैसलमेर में हर सौ-पचास बरस के अंतर पर तालाब बनते रहेएक से एक, मानक के साथ मोती की तरह गुँथे हुए।

घड़सीसर से कोई 175 बरस बाद बना था जैतसर। यह था तो बंधनुमा तालाब ही पर अपने बड़े बगीचे के कारण बाद में बस इसे 'बड़ा बाग' की तरह ही याद रखा गया। इस पत्थर के बाँध ने जैसलमेर के उत्तर की तरफ खड़ी पहाड़ियों से आने वाला सारा पानी रोक लिया है। एक तरफ जैतसर है और दूसरी तरफ उसी पानी से सिंचित बड़ा बाग। दोनों का विभाजन करती है बाँध की दीवार। लेकिन यह दीवार नहीं, अच्छी-खासी चौड़ी सड़क लगती है जो घाटी पार कर सामने की पहाड़ी तक जाती है। दीवार के नीचे बनी सिंचाई नाली का नाम है राम नाल।

राम नाल नहर, बाँध की तरफ सीढ़ीनुमा है। जैतसर में पानी का स्तर ज्यादा हो या कम, नहर का सीढ़ीनुमा ढाँचा पानी को बड़े बाग की तरफ उतारता रहता है। बड़ा बाग में पहुँचने पर राम नाल राम नाम की तरह कण-कण में बँट जाती है। नहर के पहले छोर पर एक कुआँ भी है। पानी सूख जाए, नहर बंद हो जाए तो रिसन से भरे कुएँ का उपयोग होने लगता है। उधर बाँध के उस पार आगर का पानी सूखते ही उसमें गेहूँ बो दिया जाता है। तब बाँध दीवार के दोनों ओर बस हरा ही हरा दिखता है।

हरा बाग सचमुच बहुत बड़ा है। विशाल और ऊँची अमराई और उसके साथ-साथ तरह-तरह के पेड़-पौधे। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में, वहाँ भी प्रायः नदी के किनारे मिलने वाला अर्जुन का पेड़ भी बड़ा बाग में मिल जाएगा। बड़ा बाग में सूरज की किरणें पेड़ों की पत्तियों में अटकी रहती हैं, हवा चले, पत्तियाँ हिलें तो मौका पाकर किरणें नीचे छन-छन कर टपकती रहती हैं। बाँध के उस पार पहाड़ियों पर राजघराने का श्मशान है। यहाँ दिवंगतों की स्मृति में असंख्य सुंदर छतरियाँ बनी हैं।

अमर सागर घड़सीसर से 325 साल बाद बना। किसी और दिशा में बरसने वाले पानी को रोकना मुख्य कारण रहा ही होगा लेकिन अमर सागर बनाने वाले संभवतः यह भी जताना चाहते थे कि उपयोगी और सुंदर तालाबों को बनाते रहने की इच्छा अमर है। पत्थर के टुकड़ों को जोड़-जोड़ कर कितना बेजोड़ तालाब बन सकता है अमर सागर इसका अद्भुत उदाहरण है। तालाब की चौड़ाई की एक भुजा सीधी खड़ी ऊँची दीवार से बनाई गई है। दीवार पर जुड़ी सुंदर सीढ़ियाँ झरोखों और बुर्ज में से होती हुई नीचे तालाब में उतरती हैं। इसी दीवार के बड़े सपाट भाग में अलग-अलग ऊँचाई पर पत्थर के हाथी-घोड़े बने हैं। ये सुंदर सजी-धजी मूर्तियाँ तालाब का जलस्तर बताती हैं। अमर सागर का आगौर इतना बड़ा नहीं है कि वहाँ से साल भर का पानी जमा हो जाए। गर्मी आते-आते तालाब सूखने लगता। इसका अर्थ था कि जैसलमेर के लोग इतने सुंदर तालाब को उस मौसम में भूल जाएँ, जिसमें पानी की सबसे ज्यादा जरूरत रहती!

जैसलमेर के शिल्पियों ने यहाँ कुछ ऐसे काम किए, जिनसे शिल्पशास्त्र में कुछ नए पन्ने जुड़ सकते हैं। यहाँ तालाब के तल में सात सुंदर बेरियाँ बनाई गईं। बेरी यानी एक तरह की बावड़ी। यह पगबाव भी कहलाती है। पगबाव शब्द पगवाह से बना है। वाह या बाय या बावड़ी। पगबाव यानी जिसमें पानी तक पग, पग पैदल ही पहुँच जा सके। तालाब का पानी सूख जाता है, लेकिन उसके रिसाव से भूमि का जल स्तर ऊपर उठ जाता है। इसी साफ छने पानी से बेरियाँ भरी रहती हैं। बेरियाँ भी ऐसी बनी हैं कि ग्रीष्म में अपना जल खो बैठा अमर सागर अपनी सुंदरता नहीं खो देता। सभी बेरियों पर पत्थर के सुंदर चबूतरे, स्तंभ, छतरियाँ और नीचे उतरने के लिए कलात्मक सीढ़ियाँ। गर्मी में, बैसाख में भी मेला भरता है और बरसात में भादों में भी

सूखे अमर सागर में ये छतरीदार बेरियाँ किसी महल के टुकड़े सी लगती हैं और जब यह भर जाता है तो लगता है कि तालाब में छतरीदार बड़ी-बड़ी नावें तैर रही हैं।

जैसलमेर मरुभूमि का एक ऐसा राज रहा है, जिसका व्यापारी-दुनिया में डंका बजता था। फिर मंदी का दौर भी आया पर जैसलमेर और उसके आसपास तालाब बनाने का काम मंदा नहीं पड़ा। गजरूप सागर, मूल सागर, गंगा सागर, गुलाब तालाब और ईसरलालजी का तालाब एक के बाद एक तालाब बनते चले गए। यह कड़ी अंग्रेजों के आने तक टूटी नहीं थी।

इस कड़ी की मजबूती सिर्फ राजाओं, रावलों, महारावलों पर नहीं छोड़ी गई थी। समाज के वे अंग भी, जो आज की परिभाषा में आर्थिक रूप से कमजोर माने जाते हैं, तालाबों की कड़ी को मजबूत बनाए रखते थे।

मेघा ढोर चराया करता था। यह किस्सा 500 बरस पहले का है। पशुओं के साथ मेघा भोर सुबह निकल जाता। कोसों तक फैला सपाट रेगिस्तान। मेघा दिन भर का पानी अपने साथ एक कुपड़ी मिट्टी की चपटी सुराही में ले जाता। शाम वापस लौटता। एक दिन कुपड़ी में थोड़ा-सा पानी बच गया। मेघा को न जाने क्या सूझा, उसने एक छोटा-सा गड्डा किया, उसमें कुपड़ी का पानी डाला और आक के पत्तों से गड्डे को अच्छी तरह ढंक दिया। चराई का काम आज यहाँ कल कहीं और। मेघा दो दिन तक उस जगह पर नहीं जा सका। वहाँ वह तीसरे दिन पहुँच पाया। उत्सुक हाथों ने आक के पत्ते धीरे से हटाए। गड्डे में पानी तो नहीं था पर ठण्डी हवा आई। मेघा के मुंह से शब्द निकला 'भाप'। मेघा ने सोचा कि यहाँ इतनी गर्मी में थोड़े से पानी की नमी बची रह सकती है तो फिर यहाँ तालाब भी बन सकता है।

मेघा ने अकेले ही तालाब बनाना शुरू किया। अब वह रोज अपने साथ कुदाल-तगाड़ी भी लाता। दिन भर अकेले मिट्टी खोदता और पाल पर डालता। गाएँ भी वहीं आसपास चरती रहतीं। भीम जैसी शक्ति नहीं थी लेकिन भीम की शक्ति जैसा संकल्प था मेघा के पास। दो वर्ष तक वह अकेले ही लगा रहा। सपाट रेगिस्तान में पाल का विशाल घेरा अब दूर से ही दिखने लगा था। पाल की खबर गाँव को भी लगी।

अब रोज सुबह गाँव से बच्चे और दूसरे लोग भी मेघा के साथ आने लगे। सब मिलकर काम करते। 12 साल हो गए थे, अब भी विशाल तालाब पर काम चल रहा था। लेकिन मेघा की उमर पूरी हो गई। पत्नी सती नहीं हुई। अब तालाब पर मेघा के बदले वह काम करने आती। 6 महीने में तालाब पूरा हुआ।

भाप के कारण बनना शुरू हुआ था, इसलिए इस जगह का नाम भी भाप पड़ा जो बाद में बिगड़कर बाप हो गया। चरवाहे मेघा को, समाज ने मेघोजी की तरह याद रखा और तालाब की पाल पर ही उनकी सुंदर छतरी और उनकी पत्नी की स्मृति में वहीं एक देवली बनाई गई।

बाप बीकानेर-जैसलमेर के रास्ते में पड़ने वाला छोटा-सा कस्बा है। चाय और कचौरी की 5-6 दुकानों वाला बस अड्डा है। बसों से तिगुनी ऊँची पाल अड्डे के बगल में खड़ी है। मई-जून में पाल के इस तरफ लू चलती है, उस तरफ मेघोजी के तालाब में लहरें उठती हैं। बरसात के दिनों में तो तालाब में लाखेटा (द्वीप) 'लग' जाता है। तब पानी 4 मील में फैल जाता है।

मेघ और मेघराज भले ही यहाँ कम आते हों, लेकिन मरुभूमि में मेघोजी जैसे लोगों की कमी नहीं रही। पानी के मामले में इतना योग्य बन चुका समाज अपनी योग्यता को, कौशल को, अपना बताकर घमंड नहीं करता। वह विनम्र भाव से इसका पूरा श्रेय भगवान को सौंप कर सिर झुका लेता है। कहते हैं कि महाभारत युद्ध समाप्त हो जाने के बाद श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र से अर्जुन को साथ लेकर द्वारिका जा रहे थे। उनका रथ मरुप्रदेश पार कर रहा था। आज के जैसलमेर के पास त्रिकूट पर्वत पर उन्हें उत्तुंग ऋषि तपस्या करते हुए मिले। श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया और फिर वर माँगने को कहा। उत्तुंग का अर्थ है ऊँचा। सचमुच ऋषि ऊँचे थे। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं माँगा। प्रभु से प्रार्थना की कि यदि मेरे कुछ पुण्य हैं तो भगवान वर दें कि इस क्षेत्र में कभी जल का अभाव न रहे।

मरुभूमि के समाज ने इस वरदान को एक आदेश की तरह लिया और अपने कौशल से मृगतृष्णा को झुठला दिया।

संदर्भ :

पाल के किनारे रखा इतिहास

खरे सोने से बने तालाबों की कहानी सन् 1907 के गजेटियर का अपवाद छोड़ दें तो इतिहास की किसी और अंग्रेजी पुस्तक में नहीं मिलती। लेकिन मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, जबलपुर और मंडला जिलों में यह कहानी गाँव-गाँव में तालाबों पर सुनाई देती है। इस तरह यह सचमुच पाल के किनारे रखा इतिहास है।

श्री भूपतिसिंह द्वारा लिखी गई पुस्तक 'पाटन तहसील के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास' में इस कहानी का विस्तृत विवरण मिलता है। इस विवरण में कहानी में वर्णित चार विशाल तालाबों में से एक कुंडम तालाब से निकलने वाली हिरन नामक नदी की कथा भी विस्तार से दी गई है।

इस क्षेत्र का परिचय और यहाँ दी गई जानकारीयों हमें जनसत्ता, नई दिल्ली के श्री मनोहर नायक से प्राप्त हुई है।

श्री वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यास 'रानी दुर्गावती' में भी बुंदेलखंड क्षेत्र में पारस से बनने वाले तालाबों का उल्लेख एक अलग अर्थ में मिलता है।

जबलपुर प्राधिकरण द्वारा सन् 1977 में प्रकाशित जबलपुर स्मारक ग्रंथ में भी इस कथा की झलक है। जबलपुर के पास ही सन् 1939 में हुए प्रसिद्ध त्रिपुरी कांग्रेस सम्मेलन के अवसर पर छपी 'त्रिपुरी कांग्रेस गाइड' में भी इस कथा में वर्णित क्षेत्र के कई भव्य तालाबों का विवरण दिया गया था। आजादी की लड़ाई के बीच आयोजित इस ऐतिहासिक सम्मेलन में, जहाँ श्री सुभाषचंद्र बोस

और श्री पट्टाभि सीतारमैया जैसे नेता उपस्थित थे, वहाँ भी तालाबों का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं माना गया था।

पर इस प्रसंग की तुलना कीजिए, सन् 1991 के तिरुपति कांग्रेस अधिवेशन से। जल संकट से घिरे कठिन दौर में आयोजित इस सम्मेलन का पंडाल कभी के एक भव्य पर अब सूख चुके अविलल नामक तालाब के आगर पर ही ताना गया था। आगर की नमी के कारण पंडाल के भीतर का तापमान बाहर की गर्मी से 4 अंश कम था। लेकिन इस अधिवेशन में उपस्थित हमारे नए आत्ममुग्ध नेताओं ने देश के सामने छापे तरह-तरह के संकटों से पार उतरने में लोकबुद्धि पर कोई भरोसा नहीं जताया। इसी तरह सन् 1993 का कांग्रेस अधिवेशन भी दिल्ली की सीमा पर सूरजकुंड में हुआ था। वह ऐतिहासिक तालाब भी आज लगभग पट चुका है। तालाबों की सर्वत्र की जा रही उपेक्षा के अनुपात में ही पानी का संकट बढ़ता जा रहा है।

महाभारत काल के तालाबों में कुरुक्षेत्र का ब्रह्मसर, करनाल की कर्णझील और मेरठ के पास हस्तिनापुर में शुक्रताल आज भी हैं और पर्वों पर यहाँ लाखों लोग इकट्ठे होते हैं।

रामायण काल के तालाबों में शृंगवेरपुर का तालाब प्रसिद्ध रहा है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक श्री बी.बी. लाल ने पुराने साक्ष्य के आधार पर इलाहाबाद से 60 किलोमीटर दूर खुदाई कर इस तालाब को ढूँढ निकाला है। श्री लाल के अनुसार यह तालाब ईसा पूर्व सातवीं सदी में बना थायानी आज से 2700 बरस पहले।

शृंगवेरपुर के तालाब का संक्षिप्त विवरण गाँधी शांति प्रतिष्ठान से प्रकाशित पुस्तक 'हमारा पर्यावरण' (1988) में तथा विस्तृत विवरण नई दिल्ली के 'सेंटर फॉर साइंस एण्ड एनवायर्नमेंट' द्वारा देश में जल संग्रह के परंपरागत तरीकों पर अक्टूबर 1990 में आयोजित गोष्ठी में श्री लाल द्वारा अंग्रेजी में प्रस्तुत लेख में उपलब्ध है।

पन्द्रहवीं से अठारहवीं सदी तक के समाज का, उसके संगठन का, उसके विद्या केन्द्रों का विस्तृत विवरण श्री धर्मपाल द्वारा लिखी गई 'इंडियन साइंस एंड टेक्नालॉजी इन एटीन्थ सेंचुरी' और 'द ब्यूटीफूल ट्री' पुस्तकों में मिलता है। प्रकाशक हैं विबलिया इम्पेक्स प्राइवेट लिमिटेड, 2/18 अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002

इसी विषय पर एक भिन्न प्रसंग में रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज के इतिहास पर लिखी गई एक पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ थामसन कालेज ऑफ इंजीनियरिंग' अच्छा प्रकाश डालती है। बहुत कम लोगों को यह जानकारी होगी कि देश का पहला इंजीनियरिंग कालेज कलकत्ता, बंबई या दिल्ली जैसे शहरों में नहीं बल्कि हरिद्वार के पास रुड़की नाम के एक विलकुल छोटे से गाँव में सन् 1847 में खोला गया था। इसके पीछे मुख्य कारण था, इस इलाके में कोई 20 वर्ष पहले निकाली गई गंगा नहर। यह नहर सोलानी नाम की एक नदी के ऊपर से भी निकलती है। इस नहर और इस 'अक्वाडक' का पूरा काम उस इलाके में रहने वाले गजधरों ने किया था, जिसे देखकर बाद में यहाँ के तत्कालीन गवर्नर श्री थामसन ने इन जैसे प्रतिभाशाली गजधरों के और उत्तम प्रशिक्षण के लिए रुड़की में ही कालेज खोलने की अनुशंसा ईस्ट इंडिया कम्पनी से की थी। यह देश का ही नहीं, एशिया का पहला इंजीनियरिंग कालेज था। इस पूरे प्रसंग का विवरण इस पुस्तक में मिल सकता है। लेखक हैं श्री के.वी. मित्तल, 79/2, सिविल लाइन्स, रुड़की, उत्तर प्रदेश। इस पुस्तक से हमारा परिचय डॉ. जी. डी. अग्रवाल के साथ हुई चर्चाओं से हुआ था। वे आई.आई.टी. कानपुर में प्राध्यापक रहे हैं और इस विषय की आधुनिकतम पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ गजधरों की परंपरा का भी सम्मान करते हैं। उनका पता है : प्रमोद वन, चित्रकूटधाम कर्वी, जिला वांदा, उत्तर प्रदेश। वापस फिर श्री धर्मपाल पर लौटें।

इस विषय पर पुणे की संस्था इंडियन एसोसिएशन फॉर कल्चरल प्रीडम में श्री धर्मपाल के भाषण हुए थे। इन भाषणों को नई दिल्ली के दैनिक हिंदी पत्र 'जनसत्ता' ने एक लेखमाला के रूप में प्रकाशित किया था जो बाद में शताब्दी प्रकाशन, 48 स्वर्णकार कालोनी, विदिशा, मध्य प्रदेश की ओर से 'अंग्रेजों से पहले का भारत' शीर्षक से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए थे। गाँधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित श्री रामेश्वर मिश्र पंकज की पुस्तक 'आज की अपेक्षाएँ' और 'नदियाँ और हम' भी इस विस्तृत लेकिन लगभग विस्मृत विषय पर उम्दा प्रकाश डालती हैं।

रीवा के तालाबों की जानकारी सन् 1907 के गजेटियर से ली गई है। गजेटियर तब की रीवा रियासत में आने वाले गाँवों के तालाबों का विस्तृत ब्यौरा देता है।

थार के रेगिस्तान में पानी के काम पर श्री ओम थानवी, संपादक, जनसत्ता, नई दिल्ली; श्री शुभू पटवा, भीनासर, बीकानेर तथा श्री सुरेन्द्रमल मोहनोत, मरुभूमि विज्ञान केंद्र 109 नेहरू पार्क, जोधपुर से संपर्क किया जा सकता है।

दिल्ली के 350 तालाबों का उल्लेख सन् 1971 की जनगणना रिपोर्ट में मछली पालन के संदर्भ में मिलने वाले पुराने आँकड़ों में सिर्फ एक पंक्ति में मिलता है। इस छोर को पकड़ कर आगे काम करते हुए हमें भारतीय मानचित्र सर्वेक्षण विभाग द्वारा सन् 1807 की दिल्ली पर हाल में ही छपे एक नक्शे में कई तालाब देखने को मिलते हैं।

इसी सिलसिले में श्री मुहम्मद शाहिद के सौजन्य से मिले दिल्ली के सन् 1930 के एक दुर्लभ नक्शे में उस समय के शहर में तालाबों और कुओं की गिनती लगभग 350 की संख्या छूती है। शाहिदजी से 2583 चूड़ीवालान, दिल्ली-6 पर संपर्क किया जा सकता है।

दक्षिण के राज्यों, विशेषकर मद्रास प्रेसिडेंसी और मैसूर-कर्नाटक के तालाबों के फैलाव, संख्या और संचालन के बारे में इन क्षेत्रों के गजेटियर, सिंचाई और प्रशासन रिपोर्टों से काफी मदद मिली। इसी कड़ी में सन् 1983 में कर्नाटक राज्य योजना विभाग के श्री एम.जी. भट्ट, श्री रामनाथन चेट्टी और श्री अंबाजी राव द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट से भी सहायता ली गई है।

इस बीच प्रगतिशील माने गए कर्नाटक राज्य में जल का संकट लगातार बढ़ा है। अब सरकार का भी ध्यान इससे निपटने के उपायों की तरफ गया है। यह अच्छा संकेत है कि उपायों में सरकार ने तालाबों पर ही सबसे ज्यादा भरोसा किया है। सन् 1999 में कर्नाटक सरकार ने जल संसाधन विभाग की ओर से एक नया अर्द्ध-सरकारी संगठन बनाया है। इसका नाम है 'तल संवर्धन योजना संघ'। सन् 2002 के 5 जून को कर्नाटक सरकार ने दिल्ली के प्रमुख अखबारों में बड़े-बड़े विज्ञापन निकालकर अपने राज्य में लोगों के साथ जुड़कर तालाबों की सफाई, रखरखाव और नए तालाब बनाने की शपथ ली है। सरकार ने स्वीकार किया है कि यह काम यहाँ सदियों से होता आ रहा है और ये तालाब आज भी खरे हैं।

मृगतृष्णा झुटलाते तालाब

इसे लिखने के लिए जैसलमेर, बीकानेर एवं बाड़मेर जिलों के गजेटियर एवं 1981 की जनगणना रिपोर्टों से बहुत मदद मिली है। इसके अलावा इन इलाकों की एकाधिक यात्राओं से मरुभूमि का वहाँ के समाज का और पानी से संबंधित उनकी बुद्धिमत्ता का आभास हो सका है। वहाँ की अधिकांश यात्राएँ अनुपम मिश्र को के.के. विड़ला प्रतिष्ठान से राजस्थान में जल संग्रह विषय पर मिली एक शोधवृत्ति के अंतर्गत की जा सकी हैं।

जैसलमेर शहर और उसके आसपास बने तालाबों की प्रारम्भिक जानकारी श्री नारायण लाल

शर्मा द्वारा लिखित 'जैसलमेर' नामक पुस्तिका से मिली है। प्रकाशक हैं : गोयल ब्रदर्स, सूरज पोल, उदयपुर।

इन क्षेत्रों के बारे में समय-समय पर श्री ओम थानवी, श्री भगवानदास माहेश्वरी, श्री दीनदयाल ओझा और राजस्थान गो सेवा संघ के श्री भंवरलाल कोठारी से हुई बातचीत से भी हमें बहुत मदद मिली है। राजस्थान गो सेवा संघ का पता है : रानी बाजार, बीकानेर।

घड़सीसर तालाब, गड़सीसर या गड़ीसर नाम से भी पुकारा जाता है। इस तालाब के किनारे बने मंदिर, घाट, रसोइयाँ, चौकी, पोल और तालाब पर जमने वाले मेले का वर्णन हमें श्री उम्मेदसिंह महेता की एक गजल से मिला है। यह गजल 'जैसलमेरीय संगीत रत्नाकर, पहिला हिस्सा' नामक पुस्तक में है। पुस्तक लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से सन् 1929 में प्रकाशित हुई थी। यह हमें जैसलमेर के श्री भगवानदास माहेश्वरीजी के निजी संग्रह से मिली है। देश के एक विशिष्ट तालाब पर 46 बरस पहले जैसलमेर में लिखी गई और लखनऊ से छपी यह दुर्लभ सामग्री एक विशेष महत्त्व रखती है। इसलिए हम यहाँ इसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहे हैं :

अथ तालाब गड़सीसर की गजल लिखते

कवित्त

तख्त जेसांन ताको जानत है जहांन ताको सब मुलकन में नाम तमाम अति भारी है। किल्ला है भूरगढ़ भूप जवाहिर सिंह अधिक छवि प्यारी और फोज दल अपारी है ॥ रईयत मतवारी छटा गड़सीसर की भारी जहाँ भरत नीर लाखों और किरौड़ पनिहारी है। महेता कहे उम्मेदसिंह वाहो जेसाण नाथ रियासत तुम्हारी बादशाहत से नियारी है।

लग्ना

गवरी पुत्र है गणराज। समझों सदा पूरण काज ॥ आदू मरुस्थल है माड़। जैसलमेर गड़ रजवाड़ ॥ पूरब दिशा गड़मल ताल। दोनों तरफ ऊँची पाल ॥ बंधीया घाट घाटी नाल। ऊपर महल मंदिर साल। भारीय नीर अमृत जान ॥ जिन पर शहर का मंडान ॥ दुनिया भरत आवत नीर। चौकी प्रथम ब्राजत पीर ॥ नाम जमालशा है जान ॥ माने सकल मुसलमान ॥ फिर पठियाल जिनके पास। वहाँ सिध वसूते का वास ॥ परच्यो प्रगट पायो नाम। समझों सदा सिधी काम ॥ सांमी वासूवों की प्रोल। जातो वक्त डावे डोल ॥ छत्री साल मंदिर ठाट। बधीया सरोवर पर घाट ॥ देख्या बड़ा

गज मंदर। शिव की मूर्ति अंदर ॥ होता गायत्री यगसाल। ब्रह्मण जीमता हृदमाल ॥ कीतो युं अजीत ने काम। राख्यों बगेची को नामं ॥ मंदिर रच्यो गिरधारी के। नीचे सात बंध भारी के ॥ छत्री पास है मंदर। लोले बणायो पहोकर ॥ मोटो नीलकंठ महादेव। दुनिया सकल करती सेव ॥ आगे मंदिर पठसाला के। मालिक जबलपुर वाला के ॥ वाई सदांमा का महेल। दुनिया बैठ करती सहेल ॥ नीचे माई का ओटा के। लगता भंग का घोटा के ॥ बाहर बगेची घाली के। ब्रह्मण रहत सिरमाली के ॥ बिसां की बगेची त्यार। साला मंदिर महल अपार ॥ आदू गड्डीसर रावल। मंदिर वणायो सावल ॥ देवी मात है हिंगलाज। सेवा कीयों सरता काज ॥ भारी बुरज हे गड़ी के ॥ फोजों बीच में लड़ी के। इनके रहत जल चौफेर ॥ आगे लीया नेष्टा घेर। आया पराक्रमा दे ताल ॥ च्यारों तरफ हे पठसाला। सांमा बगेचा मंदर ॥ व्यासों तणा सांमीसर ॥ भीतर मोल हे निजदेख। व्यासों बणायो हृद एक ॥ लिक्ष्मीनाथजी का बाग। मंदिर महल अच्छो लाग। आई बगेची जो आद। प्रोहितों बणाई रखयाद ॥

.....

ललित-निबंध : आधुनिकता के संदर्भ में

श्रीराम परिहार*

वर्तमान मनुष्य संस्कृति की देन है। संस्कृति ने मनुष्य का निरंतर परिष्कार किया। संस्कृति ने मनुष्य को संस्कारित किया। यह भी सच है कि मनुष्य की नैसर्गिक रचनात्मकता की चिरंतन विजय-यात्रा ने सांस्कृतिक अध्याय रचे हैं। “संस्कृति मनुष्य की वह रचना है, जिसमें मानव की सर्जनात्मक शक्ति और योग्यता का चरम निहित है।”¹ मानविकी में मनुष्य के व्यवहारों की समग्रता को संस्कृति कहा है। संस्कृति की व्यापक परिधि में मनुष्य के ज्ञान, इच्छा, कर्म से जुड़े वे सारे व्यापार आते हैं, जो प्रकृति, समाज और अदृश्य शक्तियों से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अतः ये सम्बन्ध मनुष्य के विचारपक्ष, भावपक्ष और क्रियापक्ष के अन्तरावलम्बन के परिणाम होते हैं।

संस्कृति के केन्द्र में मनुष्य है और उसके सम्बन्धों से जुड़ा मानवेतर जीव-जगत और पदार्थ-जगत है। कुछ संस्कृतियों की दर्शना ने पदार्थ में भी जीव-सत्ता की निदर्शना की है। अर्थात् संस्कृति का सीधा सम्बन्ध जीवन से है। जीवन निरन्तर परिवर्तनशील और विकासमान है। अतः जिस संस्कृति में जीवन के तत्त्व जितने अधिक होंगे, उसमें उतनी ही परिवर्तनशील और विकसनशील प्रवृत्ति होगी। जीवन-सौन्दर्य का उपासक होता है। सौन्दर्य प्रतिक्षण नवीन होता है। प्रतिक्षण की नवीनता ही जीवन को रसास्वाद देती है। आनन्द देती है। संस्कृति एक बहती नदी है। उसमें जल की चिरनवीनता बनी रहती है। साथ ही उसमें अन्य नदियों के जल को आत्मसात करने, एकरूप करने, निर्मल करने और गतिशील करने की क्षमता भी होती है। जो नदियाँ या संस्कृतियाँ ऐसी क्षमता नहीं रखतीं, वे सूख जाती हैं या समाप्त हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति के स्रोत, संस्कृति की आन्तरिक क्षमता और प्रकृति की अजस्रता तथा चिरनवीनता उसे सूखने और मिटने से बचाती है।

भारतीय संस्कृति जीव और पदार्थ दोनों में परमसत्ता की उपस्थिति मानती है। उसका यह विश्वास है कि एक परमसत्य समूचे ब्रह्माण्ड में अवस्थित है। वह अपरिवर्तनीय है। शाश्वत है। भारतीय संस्कृति का दूसरा विश्वास यह है कि प्रत्येक

*डॉ. श्रीराम परिहार, 16 आजाद नगर, खण्डवा (म. प्र.)450001

आत्मा उसी ब्रह्म का अंश है। आत्मा भी अमर है। ब्रह्म और आत्मा विशिष्ट स्थिति में एक है। अद्वैत, विशिष्ट, द्वैत और द्वैताद्वैत के आधार पर ब्रह्म और आत्मा के बारे में चिन्तन हुआ है। वह आत्मा समस्त जीवों में विराजमान है। तीसरा विश्वास यह है कि जब समस्त जीवों में आत्मा स्थित है, और वह आत्मा एक ही ब्रह्म का अंश है, तो विभेद के बावजूद समस्त मानव जाति और जीव-जगत एक ही परिवार के सदस्य हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा का विकास इसी विश्वास का परिणाम है। चौथा विश्वास विभिन्न धर्मों के बहुपन्थों के बाद एक लक्ष्य का है। सभी धर्मों की उपासना पद्धति और ईश्वर प्राप्ति के मार्ग भिन्न हैं, लेकिन उनका लक्ष्य एक है। इसलिए अलग-अलग मार्गों को उदारतापूर्वक समझना और दैवी-शक्ति के आत्मिक ऐक्य की अनुभूति करना समीचीन है। भारतीय संस्कृति का पाँचवाँ विश्वास समस्त जीवों के कल्याण में है। 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' की कल्याणी अवधारणा को आधार बनाकर भारतीय संस्कृति कर्म की प्रतिष्ठा करती है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया' की उदात्तता के कारण भारतीय संस्कृति न केवल मनुष्य, बल्कि चर-अचर सबके प्रति 'परहित' का भाव लेकर चलती है। उपर्युक्त पाँचों विश्वासों से परिचालित भारतीय संस्कृति द्वारा पोषित जीवन-विधि अपार समन्वय-क्षमता और विकसनशीलता से पुष्ट है।

पश्चिम की संस्कृति में पदार्थ और जीव में स्पष्ट भेद है। उसमें इन दोनों के जन्म और विश्वास की अवधारणाएँ भी भिन्न हैं। द्वन्द्वात्मक विकासवादी सिद्धान्त ने मनुष्य को पहले एक प्राणी और अब एक वस्तु मान लिया। औद्योगिक विकास सूचना-तन्त्र का प्रसार, सूचनाओं का विस्फोट, उपभोगवाद, विश्वग्राम की संरचना के कारण भारतीय संस्कृति पर पदार्थवादी संस्कृति का दबाव बढ़ा है। भारतीय संस्कृति के विश्व कल्याणकारी मूल्यों के सामने बाजार चुनौती बनकर खड़ा है। भारत के शहर गाँव तक पसर गए हैं। गाँव उजड़कर शहर की गन्दी बस्तियों में तब्दील हो रहे हैं। मनुष्य का जीवन और संघर्षपूर्ण हो गया है। भारतीय संस्कृति के शाश्वत तत्त्वों की घोर उपेक्षा के कारण अविश्वास, कुण्ठा, स्वार्थ और अशान्ति की व्याप्ति बढ़ रही है। आधुनिक जीवन-दृष्टि में व्यक्तिवादी और उपयोगितावादी दर्शन ने हर क्षेत्र में सकीर्णताएँ उत्पन्न की हैं।

भारतीय संस्कृति के अध्येता और प्रवक्ता डॉ. कपिल तिवारी ने पश्चिमी औद्योगिक आधुनिक सभ्यता पर अपनी गहरी विवेचना प्रकट करते हुए कहा है—'बीसवीं शताब्दी के अन्त तक खुद पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता के पास बाजार के अलावा कुछ नहीं था। प्रकृति के अबाध दोहन और कमजोर देशों के प्राकृतिक साधनों पर कब्जा करने के अलावा यह आधुनिक औद्योगिक सभ्यता अपने जीवत्व के लिए और कोई विकल्प नहीं खोज पा रही है। वैश्विकता का नया उपक्रम एक उपभोक्तावादी और बाजारवादी सभ्यता के संसारव्यापी उपक्रम के अतिरिक्त कुछ

नहीं है। सभ्यता का यह रूप एकायामी है। भाषायी और जीवन-शैली की विविधताओं में ही यह संसार रहने और जीने लायक है। उत्तर-आधुनिक औद्योगिक सभ्यता, जो तकनीक और संचार क्रान्ति के बाद बाजारवाद की ओर फैल रही है, वह मनुष्य के रहने के प्राकृतिक और मानवीय परिवेश को नष्ट करती है। यह पिछले तमाम युगों के घृणित पश्चिमी साम्राज्यवाद से अधिक, घृणित, पतित और मनुष्य-विरोधी है, इसने मनुष्य को वस्तुओं का उपयोग करने वाले दैत्य में बदल दिया है। यह शोषण की व्यवस्थाओं का अधिक परिष्कृत रूप है, इसे सभ्यता कहना भी असंगत लगता है। यह एक मूल्यवान शब्द का अपमान है।"²

जब अँधेरा घना होता है, तब दीपक की और अधिक जरूरत महसूस होती है। विश्व में आधुनिकता के कारण जो अपसांस्कृतिक फैलाव हो रहा है, उससे विश्व-कल्याण-आधारित संस्कृति को कैसे बचाया जाए, यह चिन्ता भी बढ़ रही है। आधुनिक की खरोंच से संस्कृति को सुरक्षित बचाने का दबाव भी बढ़ रहा है। साहित्य-सर्जकों ने इस दबाव को अन्तस् में महसूस किया है तथा आधुनिकता के ऐसे मूल्य, जो आज के व्यक्ति के जीवन को सकारात्मक विकास देते हैं, उन्हें स्वीकारने तथा अपसांस्कृतिक तथ्यों को नकारने का रचनात्मक कार्य किया है।

ललित निबन्ध ने विश्व संस्कृति और विश्व-मानव को केन्द्र में रखकर अपने चिन्तन को विस्तार दिया है। उसने अपने वस्तु-विन्यास में ऐसे विषयों को केन्द्र में रखा है, जो मानव संस्कृति आधारित हैं। ऐसे मूल्यों, जो एक जीव के साथ-साथ एक तिनके की रक्षा की भी चिन्ता करते हैं, को उसने अपने आत्मिक कलेवर में जगह दी है। आधुनिकता की शालीनता को स्वीकारते हुए उसकी आतंकी मुद्रा को ललित निबन्ध ने न केवल अस्वीकारा, बल्कि उसे खत्म करने की भी वकालत की है। ललित निबन्ध ने आधुनिकता की पत्थर-संधियों में फँसती जा रही सांस्कृतिक जड़ों का दर्द महसूस किया है तथा चिन्ताकुलता के साथ उन जड़ों की सुगम भूमि का निर्माण किया और संकेत दिया है। आधुनिकता की दुनिया में आज प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अकेला और अधूरा अनुभव कर रहा है। ललित निबन्ध उसे व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समाज, व्यक्ति-प्रकृति और व्यक्ति-विश्व की पारस्परिकता की व्यावहारिकता और भावनात्मकता के द्वारा पूरा करना चाहता है। ललित निबन्ध ने आधुनिकता के सन्दर्भ में एक अहं सवाल खड़ा किया है। "तुमने कैसे समझा कि आधुनिकता केवल बिजली के लट्टुओं से सजी वंदनवार के नीचे ही प्रवेश करती है? तुमने यह कैसे मान लिया कि वह केवल मिल के भोंपू की पुकार पर ही आँखें खोल सकती है? क्या अब तक तुम यान्त्रिकता और आधुनिकता को एक ही जान रहे हो?"³

ललित निबन्ध ने सांस्कृतिक दबाव को तर्क-सम्मत ढंग से स्वीकार किया। आधुनिकता और प्राचीनता का द्वन्द्व तो प्रत्येक काल में रहता है। जीवट वाली संस्कृति प्राचीन में से अनुपयोगी और नवीन में से मानव-विरोधी तत्त्वों को छोड़ती

चलती है। वह नवीन मूल्यों की परख मानवता की कसौटी पर करती है। जहाँ कहीं आधुनिकता के कारण सांस्कृतिक भवन क्षत-विक्षत हुआ है, ललित निबन्ध ने उस आधुनिकता की भर्त्सना की है। आधुनिकता का हिस्सा तकनीकी विकास है। इसने मनुष्य-निर्मित सौन्दर्य की विविधता को समाप्त किया है। दूसरी ओर इससे मनुष्य भी यन्त्रवत होता जा रहा है। ललित निबन्ध यन्त्र के बाजार में भी मानुष-भाव बचाना चाहता है। “तकनीकी विकास से एक बहुत बड़ी समृद्धि से मनुष्य वंचित हो जाता है और मनुष्य के सोचने में जो अनेकविध सौन्दर्य है और उस सौन्दर्य में एकसूत्रता है वह पहचान नष्ट हो जाती है। इसकी कीमत पर आप तकनीकी विकास करना चाहते हैं या उसके ऊपर सजग भाव से नियन्त्रण रखते हुए अपने मनुष्य-भाव को बनाए रखते हुए विकास करना, यह गहराई से सोचने की बात है।”⁴

यान्त्रिकता ने व्यक्ति को श्रम से वंचित किया और औद्योगिकीकरण ने उसे उपभोगवादी बनाया। इससे व्यक्ति के अहं और शक्ति का विकास प्रकृति की सुन्दरता के नाश की दिशा में हुआ। साथ ही मनुष्य का ‘स्व’ और प्रखर तथा बड़ा हुआ। परिणामस्वरूप प्रकृति पर मनुष्य का कब्जा उसके अधिकार के बतौर हुआ और वस्तुओं का अधिकाधिक उत्पादन और उपभोग जीवन का लक्ष्य बन गया। यह गैर-सांस्कृतिक दृष्टि पश्चिम से आयतित हुई “पश्चिमी दृष्टि में ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि एक चरम उपभोक्ता के रूप में की है। सारी प्रकृति, सारे जीव-जन्तु, सारी वनस्पतियाँ इसीलिए बनीं कि मानव उसका उपभोग कर सके।”⁵ इस दृष्टि से आज विश्व आक्रान्त है। उसका प्रभाव भारतीय समाज-जीवन पर भी स्पष्ट दिखाई देने लगा है। अतः भारतीय संस्कृति में जो समग्र का भाव था, ‘स्व’ के विस्तार का भाव था, सबमें बँटने का भाव था, सबको साथ लेकर चलने का भाव था, ‘मेरा नहीं, सबका है’ का जो भाव था, वह समाप्त हो गया। ललित निबन्धकार ने इस स्थिति को सांस्कृतिक चिन्ताकुलता के साथ अनुभव किया है और भारतीय संस्कृति की तर्कसम्मत पैरोकारी की है “यह संस्कृति संस्थाओं, प्रासादों और विद्या-केन्द्रों तक सीमित नहीं है, यह घर-आँगन तक जन संकुल से दूर से दूर विजन तक, रहस्यमय गुहा की साधना की नदी की रेती के फैलाव तक चाँदनी की तरह छिटकी हुई है। इस संस्कृति की पहचान साधारण किसान की उस उदारता में है, जो हर दाने पर किसी का नाम पढ़ता है और सबको नाई-धीबी, बड़ई-लुहार, यहाँ तक कि चिरई-चुरँग को हिस्सा देकर अनाज घर के भीतर लाता है। वह यह सब करते हुए अभिमान नहीं पालता कि मैंने उपजाया। सबको दिया, क्योंकि सबने अनाज उपजाया, मैंने नहीं।”⁶

यह जो ‘पर हित निरत निरन्तर मन-वच-क्रम नेम निबहोंगो’ की बान खत्म हो चली है, इससे स्वकेन्द्रण और उपयोगितावादी धारणा फली-फूली। ‘उपयोग करो और फेंको’ की संस्कृति ने मनुष्य को भी उपयोग की वस्तु मानना आरम्भ किया। मनुष्य से सारी सांस्कृतिक और वैश्विक चेतना के सूत्र जुड़े हुए हैं, उसे ही ‘यूज एण्ड थ्रो’

किया जाएगा, तब पदार्थ की सत्ता सर्वोपरि और चेतना की सत्ता गौण हो जाएगी। पदार्थ की और उस पर केन्द्रित ज्ञान की सीमा होती है, लेकिन मनुष्य अनन्त संभावनाएँ अपनी चेतना में गर्भस्थ किए हुए है, इसलिए उसका महत्त्वहीन हो जाना एक तरह से सृष्टि के श्रेष्ठतम का श्रीहीन हो जाना है, इसलिए ललित निबन्ध आधुनिकता की भौतिकवाद, उपभोक्तावाद, प्रदर्शनप्रियता, शहरीकरण, उपनिवेशवाद, आतंकवाद, शस्त्रीकरण आदि-आदि अमरबेलियों को सांस्कृतिक वृक्ष के लिए खतरनाक मानता है। यदि हमारे पास सांस्कृतिक कवच नहीं रहा तो “सारे सतोगुण, अध्यात्म, आत्मवाद, गाँधीवाद के बावजूद हमारे व्यक्तित्व की मणि को कोई एक रोटी, एक ट्राजिस्टर थमा कर खरीद लेगा।”⁷

ललित निबन्ध को आधुनिकता से एतराज नहीं है, लेकिन आधुनिकता के अविवेकी अन्धानुकरण के कारण हो रही सांस्कृतिक क्षति की गहरी चिन्ता है। उसकी यह चिन्ता एक तरह से मनुष्य के अमृतत्व को अक्षुण्ण रखने की चिन्ता है।

सन्दर्भ :

1. लोक-संस्कृतिबसन्त निरगुणे, पृष्ठ 7
2. कला समय (पत्रिका) डॉ. कपिल तिवारी से विनय उपाध्याय का संवाद, पृष्ठ 4
3. भोर का आह्वान डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ 57
4. नैरन्तर्य और चुनौती डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ 126
5. साहित्य का परिवेश अज्ञेय, पृष्ठ 7
6. जीवन अलभ्य है, जीवन सौभाग्य है डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ 86
7. रस-आखेटक कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 206

हिन्दी भाषा और इण्टरनेट

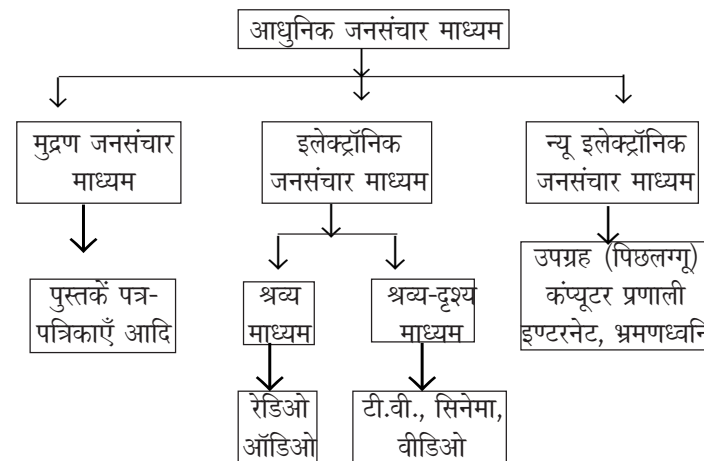
डॉ. साताप्पा लहू चव्हाण

आजादी के बाद हिन्दी पत्रकारिता व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के नवनिर्माण के प्रति प्रतिबद्ध हुई। उद्बोधन, जागरण, क्रान्ति के पश्चात पत्रकारिता ने व्यक्तिगत निर्माण करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दी भाषा को माध्यम बनाकर करोड़ों निरन्त, निर्वस्त्र नागरिकों की स्थिति का लेखा-जोखा शंखनाद के साथ प्रस्तुत करने में पत्रकार सफल हुए। राष्ट्र के नवनिर्माण हेतु पत्रकारों की परम्परा ने राजनेताओं का पथ प्रदर्शन किया। नया आत्मबोध, नई चिंतनधारा, नूतन रचनात्मक तत्त्वों के व्यापक प्रचार-प्रसार का कार्य करनेवाली हिन्दी पत्रकारिता को बल देने का महत्त्वपूर्ण कार्य 'सूचना प्रौद्योगिकी' ने किया। हिन्दी पत्रकारिता के साथ-साथ हिन्दी भाषा विकास में दूरदर्शन, सिनेमा, आकाशवाणी, इण्टरनेट आदि आधुनिक जनसंचार माध्यमों की भूमिका प्रभावकारी रही है।

समकालीन युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। 'सूचना विस्फोट' के इस युग में 'इण्टरनेट' की भूमिका महत्त्वपूर्ण और सर्वव्यापी होती है। अतः हिन्दी भाषा के विकास में आधुनिक संचार माध्यम के रूप में 'इण्टरनेट' का स्थान नवीनतम प्रणाली के रूप में महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। "भाषा एक दैवी शक्ति है जो मानव को मानवता प्रदान करती है। भावों को प्रकट करने, विचारों को बोधगम्य बनाने तथा परस्पर व्यवहार बढ़ाने का यही एक विश्वव्यापी और सशक्त माध्यम है। वास्तव में भाषा के अभाव में मूक प्राणी निरीह बना रहता है, विचार बहरे हो जाते हैं और व्यवहार लँगड़े बनकर रह जाते हैं। भाषा के कारण ही मानव सुसंस्कृत होता है, सम्मान और यश का भागी बनता है।...मौखिक और लिखित संचार-साधनों में अरबी, अँग्रेजी, इतालवी, उर्दू, चीनी, जर्मन, जापानी, तमिल, तेलगु, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, बंगला, मलय, रूसी, स्पेनी तथा हिन्दी ये 16 प्रमुख भाषाएँ हैं। गौरव की बात तो यह है कि इनमें सम्मिलित 5 भाषाएँ अपने भारत राष्ट्र की हैं। चीनी और अँग्रेजी भाषा के बाद हिन्दी ही विश्व की प्रमुख भाषा है, जो स्वतन्त्रता तथा सम्प्रभुता की

* डॉ. साताप्पा लहू चव्हाण, अधिव्याख्याता, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, अहमदनगर महाविद्यालय, अहमदनगर 414001 (महाराष्ट्र)

अमरवाणी है।...हिन्दी मानव के बुद्धि-कौशल, विवेक, चिन्तन, आचार-व्यवहार तथा संस्कृति की भाषा है।"¹ अतः हिन्दी भाषा को कंप्यूटर के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने का विचार सामने आया। 'सन् 1946'² कंप्यूटर का जन्म वर्ष माना जाता है। गुणात्मक कार्य के कारण कंप्यूटर वर्तमान युग में आवश्यक एवं व्यापक कार्यक्षेत्रवाला माध्यम बना है। कंप्यूटरों के माध्यम से तमाम इण्टरनेट सेवाएँ अपना महत्त्व बढ़ा रही हैं। इण्टरनेट की हिन्दी भाषा विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही दृष्टिगोचर होती है। इण्टरनेट की आवश्यकता और महत्त्व को बताने से पहले जनसंचार माध्यमों के क्रम में 'इण्टरनेट' का स्थान निश्चित करना आवश्यक है।



उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि समकालीन युग में अपना विशेष प्रभाव बनाए रखनेवाले न्यू इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यमों में 'इण्टरनेट' (आंतरिक संजाल) प्रभावी बन रहा है। अतः इण्टरनेट, इण्टरलिंग (Internet, Interlink) का इतिहास जानना आवश्यक है। "इण्टरनेट का बीजारोपण सन् 1969 में अमरीका की प्रतिरक्षा विभाग ARPA (Advanced Research Project Agency) के शोध कार्यक्रम के क्रियान्वयन से हुआ, जिसका उद्देश्य एक ऐसी तकनीक का विकास करना था जिसके कारण अलग-अलग कंप्यूटरों के मध्य एक सुरक्षित कम्प्युनिकेशन सम्भव हो सके, जिससे विभिन्न प्रकार के नेटवर्क को एक दूसरे से जोड़ा जा सके, जिससे नेटवर्क की विश्वसनीयता बढ़ सके। उपरोक्त नेटवर्क को (ARPANET) नाम दिया गया। प्रारंभ में इसका उपयोग केवल रक्षा सम्बन्धी जरूरतों के लिए किया गया परन्तु बाद में रक्षा सम्बन्धी मामलों में शोध कर रहे संस्थानों व विश्वविद्यालयों को भी इस नेटवर्क से जोड़ दिया गया। इन नेटवर्कों के नेटवर्क को इण्टरनेट (Internet) नाम दिया गया। यह TCP/IP (Transmission Control Procedure to Internet Protocol) अमेरिकन

सुरक्षा विभाग द्वारा विकसित एक नेटवर्क में सहायक उपकरण पर आधारित है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इण्टरनेट का कनेक्शन सन् 1973 में इंग्लैण्ड और नार्वे के मध्य स्थापित किया गया। भारत में पहला इण्टरनेट कनेक्शन प्रयोग करनेवाला संस्थान था नई दिल्ली स्थित नेशनल इन्फोर्मेटिक सेण्टर (NIC)। भारत में व्यावसायिक रूप से प्रथम इण्टरनेट सेवा 1995-96 में भारत सरकार के उपक्रम विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNL) ने की।³ हमकालीन युग का अध्ययन किया जाय तो आधुनिक जनसंचार माध्यमों में (श्रव्य दृश्य माध्यम) पिछलगू (Satellite) का उपयोग बढ़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। अब हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ एवं विभिन्न पुस्तकें भी इण्टरनेट के माध्यम से पढ़ने के लिए उपलब्ध हैं। अतः आधुनिक जन-संचार का यह माध्यम वैश्वीकरण में हिन्दी भाषा को सशक्त बनाता हुआ परिलक्षित होता है।

इण्टरनेट के माध्यम से जिस हिन्दी भाषा को हम पढ़ते हैं वह 'रिमिक्स भाषा' (Remix Language) के रूप में सामने आ रही है। 'कम्प्यूटर शब्दकोश' देखेंगे तो अनेक अँग्रेजी शब्दों के लिए हिन्दी शब्द मिल नहीं रहे हैं। इसे मानना होगा। जैसे ATM का अर्थ है ऑटोमेटिक टेलर मशीन। इस मशीन का प्रयोग बैंकों में किया जाता है। इसकी सहायता से मशीन से धन-निकासी की जाती है। ATM का एक और अर्थ है Adobe Type Manager यह सॉफ्टवेयर विण्डोज में प्रयोग किए जानेवाले टाइप फोंटों को इंस्टाल करता है।⁴ ATM के लिए हिन्दी शब्द देना नई आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी के कारण असम्भव बन रहा है। इण्टरनेट द्वारा हिन्दी भाषा का नया रूप सामने आ रहा है। इस रूप का अनेक जगहों पर स्वागत हो रहा है तो कहीं विरोध। अतः भूमंडलीकरण के इस दौर में हिन्दी का चेहरा बदल रहा है, इसे मानना होगा। कृष्ण कुमार रतू हिन्दी भाषा का वैश्वीकृत बाजारमूलक चेहरा स्पष्ट करते हुए कहते हैं—“हिन्दी के इस बदलते स्वरूप में जहाँ प्रयोजनमूलकता का व्याकरणिय तत्त्वबोध इसके सौंदर्य में बढोतरी करता है वहीं कुछ विद्वानों द्वारा हिन्दी भाषा को नष्ट करने की संज्ञा भी दी जा रही है। हिन्दी का यह चेहरा हिंग्लेजी, हिंग्लिश मिश्रित हिन्दी अथवा बिगड़ी हुई हिन्दी का है। कालचक्र जिस तरह से राजनीतिक सामाजिक बदलाव की और अग्रसर है, उसमें भाषायी समरसता समूचे विश्व में बहस का मुद्दा हो गयी है। समूचे विश्व में भाषा भौगोलिक सीमाएँ तोड़ रही है। स्पष्ट उदाहरण तौर पर जिस तरह से अँग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषाओं में नए शब्दों को खुले मन से समाहित किया जा रहा है, उसी तरह ही हिन्दी भाषा भी अब इस स्वरूप का अपवाद नहीं रह गई है। हिन्दी में भी हर भाषा के ज्यादातर अँग्रेजी के शब्दों को ज्यों का त्यों लिया जा रहा है। उदाहरण के तौर पर देश के बड़े मीडिया परिदृश्य पर एक नजर डालनी होगी।”⁵ इण्टरनेट जैसा पिछलगू (Satellite) आधुनिक संचार माध्यम भी 'रिमिक्स भाषा' से अछूता नहीं रह सका। हिन्दी भाषा का यह रिमिक्स भाषायी आयाम अनेक प्रश्नों को, विवादों को जन्म तो दे रहा है, साथ ही

साथ हिन्दी भाषा का यह चेहरा बदलते तकनीकी जगत में अपनी अलग पहचान बनाने में सफल हुआ है।

इण्टरनेट संचार-प्रक्रिया में अपनी विशेष भूमिका निभाता है। हिन्दी भाषा के प्रसार-प्रचार में भी 'इण्टरनेट' का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। 'संचार' शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ. हरिमोहन लिखते हैं, “संचार एक जटिल प्रक्रिया का परिणाम है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच अर्थपूर्ण संदेशों (meaningful message) का आदान-प्रदान किया जाता है। ये अर्थपूर्ण संदेश भेजनेवाले और संदेश पानेवालों के बीच एक समझदारी या साझेदारी बनाते हैं।”⁶ कहना सही होगा कि संचार प्रक्रिया में अर्थपूर्ण विचारों का आदान-प्रदान करने हेतु 'इण्टरनेट' का सही उपयोग हो रहा है। 'इण्टरनेट' के माध्यम से देवनागरी में यान्त्रिक सुविधाओं तथा नवीनतम द्विभाषी शब्द संसाधक प्रणाली का विकास हो रहा है। विण्डोज पर आधारित देवनागरी फॉण्ट उपलब्ध हो रहे हैं। अक्षरा-11, मल्टीवर्ड, शब्दमाला, शब्दरत्न सुपर, अलिशा, ए. एल. पी., विजन, वर्ड्सवर्ड, भाषा, शब्द सम्राट, आकृति आदि द्विभाषी शब्द संसाधकों की जानकारी इण्टरनेट के माध्यम से हिन्दी प्रेमियों को मिलने के कारण हिन्दी भाषा को विकास की नई दिशा मिल रही है। 'इण्टरनेट टेलीफोन' के माध्यम से भी प्रचुर मात्रा में हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार विदेशों में हो रहा है। साहित्यकारों के लिए अधिकतम ज्ञान प्राप्त करने हेतु इण्टरनेट उपयुक्त सिद्ध हो रहा है। विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य हिन्दी के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने का कार्य इण्टरनेट के माध्यम से सुविधाजनक तरीके से हो रहा है। इण्टरनेट पर साहित्य, शब्दकोश, संगीत, इतिहास आदि विभिन्न विषयों की जानकारी होने के कारण अनुसंधानात्माओं को विचारों का आदान-प्रदान करने में सफलता मिल रही है। वर्तमान समय में हिन्दी भाषा के अनुसंधानात्मक विकास में, अनुसंधान क्षेत्र को नई दिशा देने में 'इण्टरनेट' की भूमिका महत्त्वपूर्ण बनती जा रही है। “इण्टरनेट के माध्यम से मानव के ज्ञान में तीव्रता से वृद्धि होती है। इण्टरनेट पर एक सवाल का जवाब खोजने के सिलसिले में कई दूसरे तरह का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है, जो अचानक ही खोज के दौरान जाहिर होते हैं। इण्टरनेट की भाषा में इसे 'सिरेनडियिटी' याने आकस्मिक लाभ-वृत्ति कहा जाता है।⁷ हिन्दी भाषा के विकास में इस आकस्मिक लाभ-वृत्ति का उपयोग हो रहा है। हिन्दी पारिभाषिक शब्दों को सीखने हेतु अब इण्टरनेट का प्रयोग हो रहा है। भले ही यह पारिभाषिक शब्दावली हिन्दी व्याकरण के नियम तोड़ रही हो, इसमें अँग्रेजी शब्दों का प्राचुर्य हो, फिर भी 'इण्टरनेट' के माध्यम से हिन्दी का जो सर्वथा भिन्न रूप सामने आ रहा है। उस रूप को हिन्दी पाठक अपना रहे हैं।

समकालीनता का विचार किया जाए तो इण्टरनेट के प्रति लोगों का आकर्षण दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। उपयोगकर्ताओं को जिन शब्दों में 'ज्ञान' की आवश्यकता है, उन्हीं शब्दों में ज्ञान दिया जा रहा है और इसके प्रचलित शब्दों में होने के कारण

समकालीन पीढ़ी इण्टरनेट की 'भाषा' पर आपत्ति नहीं उठा रही है। अतः इण्टरनेट पर आ रही हिन्दी भाषा पर विवाद उठाने के बजाय इण्टरनेट के लिए 'व्यावसायिक उद्देश्य' पूरा करनेवाले हिन्दी शब्दों का निर्माण करना हिन्दी भाषा की पुरानी इण्टरनेटीय दशा बदलकर नई दिशा देने जैसा होगा। समकालीन पीढ़ी के हिन्दी प्रेमियों को इस दिशा में अग्रसर होना चाहिए। वर्तमान समय में हमें इण्टरनेट के लिए 'स्वतन्त्र हिन्दी भाषा' का निर्माण करना होगा। अतः हिन्दी शब्दों का मानकीकृत रूप इण्टरनेट में लाने के लिए व्यापक स्तर पर अनुसंधान होना अनिवार्य है। डॉ. अवधेश प्रसाद सिंह कहते हैं: "लाइनक्स नामक एक नया ऑपरेटिंग सिस्टम इसी दिशा में एक अधुनातन पहल है। यह उपयोगकर्ताओं को अपनी आवश्यकतानुसार इण्टरनेट के उपयोग की सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहा है। यह इण्टरनेट पर अन्तःक्रिया करनेवाले हजारों प्रोग्रामरों का सहयोगात्मक प्रयास है, जिसमें तकनीकी शब्दों का ही नहीं आम जीवन के शब्दों को भी एक मानक रूप देकर प्रचलित करने की चेष्टा की जा रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हिन्दी शब्दों और उसके रूपों को मानकीकृत करने का काम हिन्दीवालों द्वारा नहीं किया जाता है तो ऐसा नहीं है कि यह काम रुका रहेगा। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इस काम को अपने हाथ में ले लेंगी, आयोग बनाएंगी, तन्त्र विकसित करेंगी और हिन्दी जगत के समक्ष एक बनी-बनाई भाषा परोस देंगी। ऐसा वे हिन्दी के प्रति स्नेह के आवेश में नहीं बल्कि अपना माल बेचने के लिए करेंगी। उनकी आँखों के सामने हिन्दी क्षेत्र का एक बहुत बड़ा बाजार फैला है, जिस पर कब्जा किए बिना उनका व्यावसायिक उद्देश्य पूरा नहीं होगा।"⁸ कहना आवश्यक नहीं कि अपना व्यावसायिक उद्देश्य पूरा करने के लिए कामचलाऊ 'हिन्दी को विकसित करने का प्रयास हो रहा है। इसे रोकना होगा। इण्टरनेट के लिए हिन्दी का मानक कोश' निर्माण करने की जिम्मेदारी समकालीन पीढ़ी की है। अतः इस ओर निर्णायक कदम उठाने होंगे। संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रायोजित हिन्दी सॉफ्टवेयर उपकरण (Hindi Software Tools) विकसित किया गया है, जिसमें हिन्दी भाषा के यूनिकोड आधारित ओपन टाइप फॉन्ट्स, की बोर्ड, ड्राइवर, हिन्दी भाषा के शब्द-वर्तनी जाँचकर्ता, हिन्दी, भाषा का शब्दानुवाद टूल आदि विषयों की जानकारी प्राप्त होती है। इण्टरनेट संसाधित भाषा शिक्षण को बढ़ावा देने में भारत सरकार द्वारा हुआ यह प्रयास महत्वपूर्ण माना जाता है। फिर भी भाषा अध्यापक के लिए कंप्यूटर के माध्यम से भाषा सिखाना आज भी कठिन कार्य बना हुआ है। भाषा शिक्षण के लिए आवश्यक हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर की उपलब्धता आज भी आवश्यकता के अनुसार नहीं हो रही है। इस स्थिति को नकारा नहीं जा सकता। "कंप्यूटर द्वारा गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र आदि विषय सिखाना सरल है क्योंकि इन विषयों में किसी भी अध्यापक द्वारा पढ़ाई जानेवाली सामग्री प्रायः पूर्वनिर्धारित होती है। उसके प्रस्तुतीकरण का तरीका मात्र बदल जाता है। पर कंप्यूटर

के द्वारा भाषा सिखाना एक अत्यधिक जटिल कार्य है। भाषा सिखाना वास्तव में कौशल सिखाना है। लिखना व पढ़ना जैसा गौण कौशल अथवा नियमों पर आधारित व्याकरण आदि जैसा विषय तो फिर भी आधारभूत मूल/सामान्य कंप्यूटर से सिखाए जा सकते हैं, पर मौखिक और श्रवण कौशल सिखाना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।"⁹ वर्तमान समय का विचार किया जाए तो वर्तनीशोधक, कंप्यूटर कोश रूपात्मक और वाक्यात्मक विश्लेषक, स्पीच सिंथेसाइजर, रिकग्नाइजर, डिक्टोटर आदि की उपलब्धता के कारण इण्टरनेट के माध्यम से हिन्दी भाषा शिक्षण सुदूर पहुँच रहा है। भाषा शिक्षण की प्रक्रिया में बदलाव नजर आ रहा है। इण्टरनेट में दिन-ब-दिन बदलाव, भाषाई सुधार होकर हिन्दी भाषा शिक्षण पिछड़ी दशा से उभरकर नई दिशा की ओर अग्रसित हो रहा है। भूतपूर्व राष्ट्रपति प्रख्यात वैज्ञानिक ए. पी. जे. अब्दुल कलाम जी कहते हैं: "टेक्नॉलॉजी विज्ञान से भिन्न एक सामूहिक गतिविधि है। यह किसी एक व्यक्ति की बुद्धि या समाज पर आधारित नहीं होती बल्कि कई व्यक्तियों की आपसी बौद्धिक प्रतिभा पर आधारित होती है।"¹⁰ हिन्दी भाषा के विकास हेतु नवीनतम टेक्नॉलॉजी विज्ञान के साथ सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। अखिल भारतीय स्तर पर यह प्रयास होना जरूरी है कि हिन्दी भाषा को व्यवहार एवं प्रयोग के स्तर पर सार्वदेशिक बनाया जाए। अतः यह बात तब सम्भव है जब हमकालीन पीढ़ी इण्टरनेट के माध्यम से हिन्दी भाषा शिक्षण को नई दिशा दे। हिन्दी के विकास की यह प्रक्रिया जितनी तेज रफ्तार से हो उतना ही हमारा और हमारे देश का विकास होगा। इण्टरनेट के माध्यम से हिन्दी भाषा को वैज्ञानिक, तकनीकी, यान्त्रिकी, प्रौद्योगिकी आदि विषयों के साथ जोड़कर हिन्दी भाषा की सुदीर्घ परम्परा को और अधिक समृद्ध बनाना होगा। हमकालीन पीढ़ी के कंप्यूटरविज्ञ तथा भाषाविज्ञ दोनों को एक साथ मिलकर हिन्दी भाषा विकास में 'इण्टरनेट' जैसे आधुनिक जनसंचार माध्यम की भूमिका को ध्यान में रखकर निरन्तर कार्यरत रहना होगा। तभी हिन्दी भाषा के विकास में 'इण्टरनेट' के माध्यम से नई दिशा प्राप्त होगी।

निष्कर्ष

हिन्दी भाषा विकास में इण्टरनेट जैसे आधुनिक जनसंचार माध्यम की भूमिका के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट है कि इण्टरनेट हिन्दी भाषा विकास में सर्वाधिक प्रभावी माध्यम बन रहा है। इण्टरनेट के माध्यम से हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ, नवीनतम सूचनाएँ, पुस्तकें हमें प्राप्त हो रही हैं। अतः हिन्दी भाषा के विकास में इण्टरनेट दिशादर्शक बनता नजर आ रहा है। हम हिन्दी भाषा को इण्टरनेट के माध्यम से जितना जीवनोपयोगी, व्यवसायमूलक बनाने की दृष्टि से विकसित करेंगे उतनी जल्दी हिन्दी समृद्ध और शक्तिमान भाषा बनकर विश्व के सामने आएगी। सरकारी, सार्वजनिक, व्यक्तिगत, स्कूलों, कालेजों में व्यापक तौर पर यदि हिन्दी भाषा विकास के लिए

‘इण्टरनेट’ का प्रयोग किया जाएगा तो हिन्दी अन्ततः विश्व-मंच पर अपनी अलग पहचान बनाएगी, इसमें दो राय नहीं।

संदर्भ-संकेत

1. डॉ. अर्जुन तिवारी हिन्दी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास, पृष्ठ 17, 18
2. संपा. डॉ. शशि भारद्वाज भाषा (द्विमासिक) पत्रिका, मई-जून, 2002, पृष्ठ 132
3. प्रह्लाद शर्मा इण्टरनेट और पुस्तकालय, पृष्ठ 2
4. सम्पा. अरविंद त्रिपाठी, गुंजन शर्मा कंप्यूटर शब्दकोश, पृष्ठ-3
5. सम्पा. डॉ. डी. एन. प्रसाद बहुवचन, अक्टूबर-दिसम्बर, 2007, पृष्ठ 130, 131
6. डॉ. हरिमोहन सूचना प्रौद्योगिकी और जनमाध्यम, पृष्ठ 25
7. डॉ. गोविन्द प्रसाद, अनुपम पाण्डेय हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप, पृष्ठ 282
8. सम्पा. नन्द किशोर मिश्र भाषा (द्विमासिक) पत्रिका, मई-जून, 1996, पृष्ठ 10
9. सम्पा. डॉ. गंगाप्रसाद विमल भाषा (द्विमासिक) पत्रिका, मई-जून, 1996, पृष्ठ 14
10. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम अग्नि की उड़ान, पृष्ठ 183

पुस्तक-चर्चा

शंख-सिन्दूर

समीक्षा : ब्रज बिहारी कुमार

वरिष्ठ साहित्यकार, बहु-भाषाविद् एवं रामकथा के विशेषज्ञ डॉ. रमानाथ त्रिपाठी से कुछ समय पूर्व उनके उपन्यास ‘शंख-सिन्दूर’ के अंग्रेजी अनुवाद की प्रति (अनुवादक, प्रो. प्रभात कुमार पाण्डेय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) प्राप्त हुई थी। मेरे आग्रह पर उनसे मुझे पुस्तक की मूल हिन्दी प्रति भी प्राप्त हुई थी (प्रकाशक : साहित्य सहकार, दिल्ली-32) उल्लेख्य है कि उपन्यास के उड़िया एवं असमी अनुवाद भी (क्रमशः डा. अभय कुमार पटनायक एवं डा. भूपेन्द्र राय चौधुरी द्वारा) प्रकाशित हुए हैं।

अपने छोटे कलेवर (परिशिष्ट के अतिरिक्त मात्र 105 पृष्ठ) के बावजूद यह हिन्दी का एक विशिष्ट उपन्यास है; पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) की पृष्ठभूमि में लिखा गया हिन्दी का संभवतः अकेला उपन्यास। जैसा कि पुस्तक के प्रारंभ में ही सत्यपाल चुघ के विचार उद्धृत किये गये हैं : “यह एक ऐसी संयमशील ब्राह्मण-कन्या की करुण कहानी है जिसके गंगाजल से पवित्र और कच्चे नारियल के दुधिया रस से मधुर-शीतल स्नेह को टुकरा कर उसका प्रेमी ठीक विवाह के दिन, नस-नस को झनझना देने वाले नशीले प्यार की ऊष्मा की खीज में धर्मान्तरण कर बैठा।” चन्द्रावती चिर-कुमारित्व स्वीकार करती है; फुलेश्वरी नदी के तट पर अपने लिए अपने पिता वंशीदास द्वारा बनवाये गये शिव मन्दिर में आराधना करते हुए वह आजीवन रामायण रचना में तल्लीन रही। चन्द्रावती कृत ‘रामायण’ का जिसे वह पूरा नहीं कर सकी थी उल्लेख रामानन्द सागर ने अपनी ‘धारावाहिक रामायण’ के संदर्भ में किया है। रामायण के अतिरिक्त चन्द्रावती ने, जो स्वयं संस्कृत की पण्डिता थीं, ‘दस्यु केनारामेर पाला’ तथा ‘मलुआ सुन्दरी’ नामक गाथा गीतों को सामान्यजन के लिए लिखा था। नयन चाँद प्रणीत गाथा-गीत ‘चन्द्रावती चरित’ के अतिरिक्त चन्द्रावती प्रणीत उल्लिखित तीन गाथा-गीतों के विभिन्न पात्र इस उपन्यास में अवतरित हुए हैं। कहना न होगा कि इन विभिन्न कथाओं के अन्तर्गुम्फन से यह उपन्यास अत्यन्त रोचक बन पड़ा है। यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि विभिन्न गाथा-गीतों पर आधारित यह उपन्यास बिल्कुल काल्पनिक भी नहीं है। चन्द्रावती के पूर्वज चक्रपाणि राढ़ देश से जाकर ब्रह्मपुत्र के किनारे एक गाँव में बस गये थे। उनकी पाँचवीं पीढ़ी में वंशीदास

भट्टाचार्य हुए जिन्होंने 'मनसा-मंगल' काव्य लिखा था, जो पद्मपुराण के नाम से भी विख्यात है। इसके लेखन में चन्द्रावती का भी योगदान रहा था।

स्वर्गीय दीनेशचन्द्र सेन ने 'पूर्व बंग-गीतिका' एवं 'मयमनसिंह गीतिका' नाम से कलकत्ता विश्वविद्यालय से कई खण्डों में बांग्लादेश के गाथा गीतों का संकलन प्रकाशित कराया था। 'प्राचीन पूर्व बंग गीतिका' के लेखक वृद्ध क्रान्तिकारी श्री क्षितिश चन्द्र मौलिक ने तो गाँव-गाँव घूमकर इन गीतिकाओं का संकलन किया था। वंशीदास का गाँव पातुआरी/पातुरी, मालो/मलुआ का पतुआरी के निकट आड़ालिया तथा केनाराम का बाकुलिया अब भी मयमनसिंह के किशोर गंज में अवस्थित हैं। मौलिक 1935 में और अन्तिम बार 1954 में फुलेश्वरी नदी से थोड़ा हटकर निर्जन स्थान पर अवस्थित पातुआरी गाँव गये थे; शिव मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। ध्यातव्य है कि मालो तथा केनाराम उपन्यास के मुख्य पात्रों में हैं। इस उपन्यास में चिर कुमारिव का वरण करनेवाली चन्द्रा/चन्द्रावती के साथ ही उसके चिर कुमारिव के कारक जयचन्द्र हैं (जयन्त तथा जयानन्द भी उसी के नाम लोकगीतों में हैं)। इसमें सीता है तो उसे पुनः वनवास देनेवाले राम भी; रावण है तो मन्थरा को मात देनेवाली राम की सौतेली बहन कुकुआ भी। मालो (लोकगीतों की मलुआ) सारे प्रलोभनों तथा दबाव को झेलते हुए गरीब पति का साथ नहीं छोड़ती।

जयचन्द्र आशमानी के आकर्षण में पड़कर मुसलमान बना था। आशमानी का पिता बाउल मियाँ बेहद उदार व्यक्ति था तो उसका फुफेरा भाई आबुल्ला कट्टर जेहादी। बाउल मियाँ ने एक बार पण्डित वंशीलाल से पूछा था : ठाकुर क्या मैं हिन्दू हो सकता हूँ? बाउल मियाँ ने अपने ब्राह्मण अतीत और इस्लामी वर्तमान के बीच का पूल तोड़ा नहीं था। बगल के गाँव की मुसलमान औरतों को पूल न तोड़ पाने की कीमत बाउल मियाँ के भगीना आबुल्ला के हाथ अपनी इज्जत तथा अपने प्राण देकर चुकानी पड़ी थी।

इस उपन्यास में केनाराम दूसरे अंगुलिमाल के रूप में अवतरित हुआ है। निःसंतान माता-पिता को देवी-पूजा से केनाराम प्राप्त हुआ था। देवी-पूजा से क्रय किए जाने से उसका नाम केनाराम रखा गया। दूध के एक दो दाँत होते ही माँ मर गयी। पिता पालने के लिए मामी को दे आये। भयंकर अकाल पड़ा। मामा ने पाँच कट्ठा धान के बदले उसे एक दस्यु सरदार को बेच दिया। भयंकर डाकुओं के बीच पल-बढ़कर केनाराम खूंखार डाकू बना। अत्यन्त निर्मम। उसीसे वंशीदास भट्टाचार्य एवं उनके दल की मुलाकात मयमनसिंह के जंगलों में हुई थी। उन्हें मारने के पहले उसने उन्हें अपना गान सुनाने को कहा। वाद्य-यंत्रों की झंकार के साथ मधुर संगीत की लहरियों से जंगल प्रांतर गूँज उठा। सारी रात मनसा-मंगल का गान होता रहा। सवेरा हो गया था। अचानक केनाराम चीत्कार कर रो पड़ा: "गुरु, यह तुमने क्या सुना दिया? गुरु हो"

"गुरु मुझे तो आज तक ऐसी बातें किसी ने नहीं बताई। माता-पिता और बेटे का, पति और पत्नी का ऐसा भी प्रेम होता है, यह मैंने कभी नहीं जाना। मुझे अपने चरणों में ले लो। अब भीख मत मांगना गुरु! मैं तुम्हें इतना धन दूँगा कि सात पीढ़ी तक बैठे-बैठे खाओगे।"

पागलों की तरह भागते हुए जाकर वह नई स्वर्ण मुद्राओं से भरे तीन घड़े उखाड़ लाया। वंशीदास के नहीं लेने पर उसने उन्हें नदी की धारा में फेंक दिया और रक्त रंजित खांडा से अपनी गर्दन काटने को उद्धृत हो उठा। गुरु ने रोका, उसे मुक्ति का मंत्र दिया। हृदय-परिवर्तन के लिए अंगुलिमाल को बुद्ध मिले थे; दस्यु केनाराम को वंशीदास।

अपनी भूल की तीव्रानुभूति के प्रायश्चित्त-स्वरूप जयचन्द्र ने जल-समाधि ले ली। इस घटना के आघात से चन्द्रावती भी चल बसी। फुलेश्वरी के तट पर उसकी चिता पर सभी थे, सब वर्गों के लोग। केनाराम ने मृदंग के खोल फाड़कर फेंक दिए। "जब साक्षात् पद्मा-बेटी चन्द्रा नहीं रही तो किसके गीत गाऊँगा?" पंडित वंशीदास छोटी सी पोटली लेकर वृन्दावन जा रहे थे। केनाराम भी साथ हो चला। अपने छोटे से बेटे चन्द्रमोहम्मद के साथ आशमानी भी।

चन्द्रावती के बड़े भाई, श्रीवल्लभ ने उसकी एकमात्र अमानत बाँस की एक पिटारी को खोला। एक पुरानी फटी साड़ी में लिपटे एक जोड़ा शांखा (शंख की चूड़ियाँ) एवं सिन्दूर मिले; साथ ही दो बस्ते। शांखा एवं सिन्दूर जयचन्द्र ने मालो के द्वारा विवाह की तिथि के तीन-चार दिन पूर्व चन्द्रावती को भिजवाए थे। बंगाल में वे स्त्रियों के सधवापन की प्रतीक वस्तुएँ हैं। श्रीवल्लभ ने उन्हें उसी स्थान पर नदी में प्रवाहित कर दिया जहाँ उसकी चिता की भस्म प्रवाहित की गयी थी।

एक बस्ते में चन्द्रावती प्रणीत 'दस्यु केनाराम का माला' एवं 'मलुआ सुन्दरी' की प्रतियाँ थीं, तो दूसरे में उसी के द्वारा लिखी गयी रामायण की अपूर्ण प्रति।

पूर्व बंगाल के सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक परिवेश को दर्शाता यह हिन्दी का अनूठा उपन्यास है। यहाँ इस बात पर बरबस ध्यान चला जाता है कि दूसरे प्रदेशों की पृष्ठभूमि में लिखे, विशेषतः बिहार एवं झारखण्ड के बांगला उपन्यासों की लम्बी परम्परा रही है। हिन्दी में यह अभाव खटकता है। उपन्यास की मनोहर गतिशील संवादात्मक शैली, तत्कालीन रूपकों एवं लोक तत्वों का सफल समायोजन, बांगला पदों का अन्तर्गुणन, नये बिम्बों एवं उपमाओं का प्रयोग, रचना का कसाव एवं आवेग दीप्त काव्यात्मक भाषा इस कृति को विशिष्ट बनाती हैं। इसमें प्रयुक्त बिम्बों एवं उपमाओं का उल्लेख आवश्यक है, जैसे : ज्वार का चील, महुआ के फूल सा सुन्दर, हृदय में कदम्ब खिलना, तितलियों के पंख सी फड़फड़ाती पलकें, तीलफूल सी नाक, पके केले से भरे अंग, लाल मिर्च सी चटपटी। उपन्यास में गुम्फित बांगला पदों के मूल रूप पाद-टिप्पणियों में दिए जाने से पुस्तक महत्त्वपूर्ण बन जाती है।

आप्तलोक की तलाश की कहानियाँ*

संजय कुमार सिंह**

‘टुकड़ा-टुकड़ा आकाश’ डॉ. सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु की इक्कीस छोटी-बड़ी कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों की पाठ-प्रक्रिया का प्रत्याख्यान यह कहकर किया जा सकता है कि मनुष्य के हृदय की सबसे बड़ी लालसा होती है कि उसके भाव- विचार और अनुभव अपनी व्याप्ति में कहानी बन जाएँ। यह बन जाना ही उसकी रचना-प्रक्रिया है यानी दृष्टि बिन्दु का मुख्य तनाव।

कहना नहीं होगा कि पाठक जब कहानी से गुजरता है, तो वह उस पाठ के अलावे अपना भी एक पाठ बनाता चलता है। ऐसा करते हुए वह कहानी की रचना-प्रक्रिया की पाठ-प्रक्रिया के अंदर आत्मसात करते हुए कहानी की बारीकियों, प्रतीकों, फैंटेसियों, भाषिक संरचनाओं, स्वरूपों का भी उल्लेख करते चलता है। इसके लिए उत्तरदायी समय सन्दर्भ को भी पाठ प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। कहानी की पाठ-प्रक्रिया दुहरे स्तर पर चलने वाली एक जटिल मानसिक क्रिया है जहाँ पाठक की सबसे बड़ी चाहत कहानी के मर्म तक पहुँचने की होती है। कहानी का मर्म वास्तव में अनुपस्थित की तलाश है।

‘टुकड़ा-टुकड़ा आकाश’ की कहानियाँ भी आज की भूमंडलीकृत बाजारवादी व्यवस्था में आप्तलोक की तलाश करती हैं। वह जो सामयिक स्वार्थ और अमानवीय आपाधापी के अश्वमेध में कहीं खो गया है। दरअसल यह ट्रेजेडी उस कहानी की भी है, जिसके अंदर कभी पूरा लोकजीवन धड़कता था। जातीय जीवन का जीवन्त इतिहास रचा होता था और किस्मागो की आँखों में अतीत की स्मृतियों की कौंध वर्तमान से लेकर भविष्य तक फैली हुई दिखती थी। पर आज कल्पना का, भावना का और स्मृति का वह लोक वर्तमान की चौखट पर लहू-लुहान है, “कल रहेंगे कि नहीं” इसका भी जब पता नहीं तक आदमी के खून का प्यासा बना है आदमी जो चलता आदमी? इन कहानियों के बारे में कुछ कहने से पहले डॉ. सुकन पासवान अगर यह जिन्दगी होती हजारों साल की तो फिर आदमी से कौन-सी चाल प्रज्ञाचक्षु के

*टुकड़ा-टुकड़ा आकाश, लेखक सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु, पंकज बुक्स, दिल्ली-110091, मूल्य 150 रुपये

** डॉ. संजय कुमार सिंह, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डी.एस.कॉलेज, कटिहार, पिन-854105

लेखकीय वक्तव्य को भी देख लेना जरूरी होगा, “संग्रह की कहानियों को मैंने उनकी जन्म की मिट्टी, परिवेश और आबोहवा से अलग नहीं होने दिया है।”...यहाँ यह कहना बेमानी होगा कि इनसे अलग कहानी का कोई जीवन होता। कहानी कहने-सुनने से लेकर लिखने-पढ़ने की परम्परा तक हमारे होने की इन्हीं वास्तविक और अवास्तविक अनुभूतियों से जुड़ी होती है, लोक गया तो हम गए और कहानी गयी। सच तो यह है कि इस अर्थ में वह लुप्त होते लोक का पुनःसृजन करती है

ठीक ‘पूस हार्डी के बूड़ान’ की तरह! प्रकारांतर से हर कहानी और कहानीकार यही करता हैयही कहानी की रचना-प्रक्रिया का सार्वभौमिक और सार्वकालिक सत्य है। आइए हम इसी पुनः सृजित दुनिया की तलाश करें। इन कहानियों में पहली कहानी है, ‘टुकड़ा-टुकड़ा आकाश’ जो संबंधों के स्वार्थपूर्ण विखण्डन की कहानी है जहाँ आनंद के आई. ए. एस. बनने और वर्गांतरण के बाद कई दुनियाओं के आकाश टुकड़ों में विध्वस्त हो जाते हैं। रामदेव सिंह की कहानी ‘गठरी’ की याद आती है जहाँ बिखरी हुई गठरियों के बीच अपनी दुनिया के साथ माँ पीछे छूट जाती हैनैरेटर कलात्मक उपक्रमों से उस छूटती दुनिया को पुनः सृजित कर पाता है। प्रज्ञाचक्षु की इस कहानी में एक तरह से उस छीजती दुनिया के विवरण हैं। इस आई. ए. एस. वर्ग की प्रतिभा, मेधा, महत्ता और बुद्धिजीविता के सारे मान्य-मूल्य परम्परागत उम्मीदों और आस्थाओं की सीमा रेखा को तोड़कर अर्थ की अपसंस्कृति में अब विन्यस्त हो गए लगते हैं।

‘सिंगेसर फूफा’ एक दुर्लभ चरित्र कथा है, जो आज की दुनिया से लुप्त होने की कगार पर है। कहानी में चरित्र सृष्टि का अपना महत्त्व होता है। पर यह केवल कथा सृष्टि नहीं है, बल्कि जीवन के अहम किरदार हैं, जो कभी थे, पर आगे नहीं रहने वाले हैं। उनमें ईमानदारी, कर्मठता और कर्मशीलता का अहेतुक जीवट होता था। ठीक बेनीपुरी के पात्रों जैसे वे गये, वह दुनिया गयी। प्रज्ञाचक्षु के सामने जब एक से एक जटिल संश्लिष्ट अन्तर्विरोधी मनोशिल्प वाले छूटे हुए लोगों की दुनिया है तो वे सिंगेसर फूफा को याद कर कहानी को भूलते और छूटते रास्तों की ओर ले जाना चाहते हैं। माँ कहती है, “वे धोती लेकर जिस साल लौटे थे, रास्ते में ही गंडकी की गोद में उनकी नाव पलट गयी।” (पृष्ठ 22) पर मेरी नजर में तो यह अनिवार्य दुर्घटना है। नाव न भी पलटती, तो कोई न कोई गंडकी उन्हें लील जाती।

वस्तुतः मैं कहानी को तोड़कर नहीं, जोड़कर पढ़ने का आदी हूँ। यह मेरी अपनी पाठ-प्रक्रिया है? जो जरूरी नहीं कि कहानीकार के पाठ से मेल खाए ही। कहानी की अपनी मुक्ति होती है और पाठ-प्रक्रिया की अपनी। मैं डॉ. नामवर सिंह के इस कथन से सहमत हूँ कि अक्सर कहानी का विचार उसका वक्तव्य नहीं होता। अब कहानी में नाव वाली दुर्घटना को ही लीजिए इस आकस्मिक घटना की अपनी अनिवार्य प्रयोजनीयता है। इसे जाने बिना कहानी के मर्म तक पहुँचना असंभव है।

कथादेश के दिसम्बर 2006 कहानी नये पाठ-6 में जयप्रकाश ने पाठ-प्रक्रिया पर बहुत सारे मौलिक सवाल उठाए हैं। यह जरूरी है कि पाठ-प्रक्रिया, पाठ-प्रविधि और पाठ के औचित्य आदि पर हम गम्भीरता से विचार करेंवहाँ सिर्फ नए ढाँचे का सवाल नहीं है। आरंभ से ही पाठ-प्रक्रिया का सवाल है यह। किलर्ज कहानी के सन्दर्भ में डॉ. सिंह ने इशारा किया है। केवल मोहन दास, वारेन हेस्टिंग्स का साँड़, पाल गोमरा का स्कूटर, अविनाश मोटू आदि कहानियों के सन्दर्भ में ही इस पर विचार नहीं होना चाहिए। आत्मपूर्ण ग्रहणशीलता के लिए समग्रता में सामाजिक/सांस्कृतिक परिवेश का परिज्ञान होना आवश्यक है। नए ढाँचे और गढ़त के सन्दर्भ में ही कहानी में समाये विवरणों, सूचनाओं, तथ्यों, प्रतीकों, अन्यार्थों आदि की चर्चा नहीं होनी चाहिए। ऐसा कहकर हम कहानी का सुविधानुसार सरलीकृत विजापान करते हैं जबकि सच्चाई यह है कि कोई भी साहित्यिक अभिव्यक्ति सर्जनात्मक यानी गढ़त होती है। क्या बूढ़ान गढ़त नहीं है? प्रेमचंद की बड़े भाई साहब, कफन, पूस की रात नहीं? बहुत सीधी-सी कहानी सिंगेसर फूफा भी गढ़त है। कहानी का मर्म तो गढ़त के बाहर होता है, उसे ढूँढ़ना पड़ता है। हिन्दी कहानी के मामले में यह पाठ-प्रक्रिया का दोष कहा जाएगा कि हमने कोई ऐसी पाठ-प्रविधि नहीं बनाई कि सरलीकरण से बचा जाए। क्या तथाकथित गढ़त वाली (मैं नहीं कहता) कहानी ही श्रेष्ठ होती है? गढ़त के कई रूप हो सकते हैं। हमें इस अन्तर्विरोध के यथार्थ को समझना होगा। बकौल डॉ. नामवर सिंह, “आज बहुत-सी श्रेष्ठ कहानियाँ; गो श्रेष्ठ कहानियाँ बहुत नहीं होतीं और न हैं ही, ऐसी मिलेंगी, जिनका कथानक चढ़ाव-उतार हीन, एकदम सपाट है, जिसमें पहाड़ी सड़क की तरह न तो कदम-कदम पर आकस्मिक मोड़ मिलेगा और न ऊँचाई-नीचाई ही। (पृष्ठ सं. 15); कहानी नई कहानी। जयप्रकाश जी बताएँगे, कि इन कहानियों के गढ़त में अन्यार्थों की कोई स्थिति होती है कि नहीं? क्या इन्हें गढ़तहीन कहानियों की श्रेणी में रखा जाएगा? उनसे यह भी कहना है कि मनोरंजन और बुद्धिरंजन कोई अलग प्रक्रिया नहींयह ग्रहणशीलता का परिणाम है। बैंडिट क्वीन देखते हुए हम जिन अनुभवों से गुजर रहे थे, उसके विपरीत कुछ लोग सीटियाँ बजा रहे थे। इस अलग स्तर को तो स्वीकार किया जा सकता है पर इसे उस फिल्म का मर्म नहीं कहा जा सकता। मानसिक क्रिया व्यापारों का वर्गीकरण गंभीरता से होना चाहिए। कहानी के लिखित विमर्श में सौन्दर्यात्मक क्रियाकलाप से क्या आशय हो सकता है? दूसरी बात कि कहानी की पाठ-प्रक्रिया पर वह विमर्श किन लोगों के बीच हो रहा है? हमारे बीच विमर्श के कुछ सुचिंतित प्रतिमान होने चाहिए अन्यथा हम अपने ही बनाए जाल में फँस जाएँगे। रस, मर्म, वक्तव्य आदि शब्दों को पारिभाषित करना होगा इसकी प्राप्ति पाठक में कैसे होती है? और कहानी के पाठक से हमारा अभिप्राय क्या है? हम किस पाठक की चर्चा पाठ-प्रक्रिया में करते हैं? डॉ. सिंह (कहानी नई कहानी, पृष्ठ 77) पर उस पाठक के बारे में कहते हैं, “इस प्रकार एकदम

मूल तो नहीं फिर भी काफी करीब की एक कहानी प्रतिमा निर्मित होती है...कहानी पढ़ने का मतलब है एक ऐसी ही प्रतिमा का निर्माण।”

...मेरे समझ से यही कहानी का नया पाठ है जो उस मूल पाठ का अतिक्रमण करता है। डॉ. बच्चन सिंह उत्तर-आधुनिकता और विखंडनवाद के सन्दर्भ में इसे अनुपस्थित की तलाश कहते हैं, “शब्द अपने आप में अपर्याप्त और अपूर्ण होता है। वह जितना कहता है, उससे अधिक नहीं कहता यानी उसमें विलोपीकरण की शक्ति है...चिह्नों में कुछ निशान होते हैं, जो हमें अनुपस्थित अर्थ की ओर ले जाते हैं।” (पृष्ठ 103) आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज-शब्द)। टेक्स्ट से ही बना है टेक्स्चर जिसे हम पाठ-रूप, शब्द-रूप, शब्द-रचना आदि कहते हैं। और यही किसी कहानी का भी रूप है जो गढ़त है। हिन्दी आलोचना में कहानी की पाठ-प्रक्रिया पर गंभीरता से विचार नहीं हुआ है। कुछ कहानियों तक विमर्श को सीमित रखने से कोई पाठ-पद्धति नहीं निर्मित होगी।

आकस्मिक नहीं कि डॉ. सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु की कहानियों के साथ पाठ-प्रक्रिया पर संवाद का यही अभिप्राय है। कोई भी कहानी अच्छी या खराब दृष्टि-बिंदु के तनाव के कारण होती है। यही सृजन का माकूल आधार है जो रचनाकार की यथार्थ को देखने की दृष्टि हो सकती है किन्तु पाठ-प्रक्रिया में समानुभूति फिर भी हो सकती है। *ठाकुर का कुआँ* का हर पाठ दलित विमर्श के पक्ष में जाएगा, मेरा मतलब कुपाठ से नहीं है। लेकिन ‘आरक्षण का संरक्षण’ प्रज्ञाचक्षु की एक जटिल और संश्लिष्ट यथार्थ की कहानी है। जो आरक्षण के राजनीतिक पाठ का अतिक्रमण है। कहानी अलग तरीके से इस पोल को खोलती है। मुक्ति मंत्र आत्म छलनामय जीवन की दास्तान है तो अपहरण की केस थ्योरी पढ़कर यही लगा कि लगभग डॉ. कविता चौधरी की कहानी भी यही है। हमारा सभ्य समाज एक नैतिक फिसलन के दौर से गुजर रहा है। हत्या और अपहरण तो सिर्फ सिक्के के अभिन्न पहलू हैं। असल सवाल अनैतिकता का है। इसी तरह एक्सचेंज ऑफर भी विकृत और कुंठित समय समाज की कहानी है, जिसके पीछे उपभोक्ता संस्कृति वाली आत्म-विच्युत दुनिया का यथार्थ है। ‘अग्रवादी’ कहानी का संदेश महत्त्वपूर्ण है, जहाँ आतंक मिटानेवाला आंदोलन लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है। बैट नं. सरकारी लालफीताशाही और भ्रष्टाचार की कहानी है तो ‘मछली’ आत्मविच्युत मनुष्य की एक कतरा पानी के लिए पामाल जिंदगी का इतिवृत्त। ‘रोता चाँद बिलखता सूरज’ मिथक के बदल जाने की कहानी है। संग्रह की अन्य कहानियों में पीपल परछाई, माँ आदि का भी विशेष रूप से जिक्र होना चाहिए।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रज्ञाचक्षु की कहानियों में बदलती हुई बाजारवादी आधुनिक दुनिया की तस्वीरें हैं, व्यवस्था के रूप में जिस भूमण्डलीकृत मॉडल को जीने के लिए हमने आयात किया है। जाहिर है वहाँ सम्बन्धों के स्वरूप बदल गए हैं। पूँजी निवेश वाले इस दौर में भौतिक संसाधनों की ओर भागती मनुष्य

की लिप्साओं के साथ महत्वाकांक्षाओं का अन्तःसंघर्ष और अनिवार्य परिणति के रूप में विध्वंस होता लोक जीवन है। ऐसा लगता है कहीं न कहीं कुछ हम 'मिस' कर रहे हैं। एक ऐसी व्यवस्था, ऐसा तन्त्र जो हमारा नहीं है या हमारा होकर भी हमें अपनी दुनिया से अलग कर रहा है। अलगाव, विस्थापन, निर्वासन, आत्मविच्युति आदि आज की अमानवीकृत मानवीय दुनिया की नियति हैं। इन कहानियों के यही पाठ हो सकते हैं। पर आपत्ति के रास्ते फिर भी खुले रह जाते हैं।

पुनश्च: हॉ जयप्रकाश जी (पृष्ठ 79 कथादेश-2006 पर) कहते हैं, “नई गुण ग्राहकता और सौंदर्य दृष्टि के अभाव में वॉरिन हेस्टिंग्स का साँड़ एक देशी युवती की प्रेम गाथा की तरह पढ़ी जाएगी।” सवाल उठता है क्यों पढ़ी जाएगी? कहानी बदल गई और उसी समय-समाज का पाठक मूर्ख रह गया? काव्यशास्त्र में पाठकों की कोटियाँ बनाई गई हैं। शास्त्र होता ही है लोक शिक्षण के लिए। हिन्दी आलोचना ने क्या किया? क्या पाठक का अतिसाधारण और सरलीकृत विभाजन ही उसकी उपलब्धि है? उसका पाठक अद्यतन ‘अपटुडेट’ नहीं हुआ तो यह दोष किसके मत्थे मढ़ा जाएगा? हॉ एक पाठ के पक्ष में मैं कतई नहीं हूँ, एक प्रविधि हो सकती है। अगर प्रेम गाथा के रूप में ही पढ़ी जाए तो दूसरी कहानी ‘तीसरी कसम’ का कोई और पाठ नहीं होगा। पर मुझे तो इस कहानी में अर्थ की विडंबना दिखती है। यह विडंबना ही कहानी का असली मर्म है, जो अपने अभिप्राय में भेद मूलक अर्थ व्यवस्था की त्रासदी की ओर संकेत है। हीराबाई और हीरामन अर्थ की विडंबना के कारण ही अपनी स्वाभाविक दुनिया से आत्म निर्वासित हैं। अतः दोनों का प्रेम कथामुक्ति का योग है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी अर्थ सत्ता का यह खलनायक महत्त्वपूर्ण है। असल में चीजों को देखने की एक दृष्टि होनी चाहिए जो पाठ-प्रक्रिया को कहानी के आर-पार ले जाए, तभी उसकी उपयोगिता सिद्ध होगी। सामाजिक जीवन एक सघन, कॉम्पेक्ट यथार्थ है जो सम्बन्धों के जाल से घिरा होता है पर यह सम्बन्ध एक जैसा नहीं होता।

पुस्तक-समीक्षा

समग्र यथार्थ की कहानियाँ*

संजय कुमार सिंह**

डॉ. विजयराघव रेड्डी द्वारा अनूदित तेलुगु की तीस प्रतिनिधि कहानियों के संकलन से गुजरना मेरे लिए एक सुखद अनुभव रहा। भारत के जिस भौगोलिक, सांस्कृतिक एकता की बात हम सैद्धांतिक रूप में करते हैं, उसका व्यावहारिक रूप इन कहानियों में मूर्त होता है। डॉ. रेड्डी साधुवाद के पात्र हैं, सवाल अनुवाद की उस ऐतिहासिक परम्परा के उल्लेख का नहीं, उसे अक्षुण्ण बनाये रखने का है। अनुवादक का जीवट, उत्साह और रचनाधर्म के प्रति प्रतिबद्धता का कायल कोई भी हो सकता है। सही अर्थ में अनुवाद दो भाषाओं के बीच एक ऐसा पुल है, जो आपस में बँटी अपनी ही दो दुनियाओं को जोड़ता है। मनुष्य के दुःख-दुख, रोग-शोक, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, संघर्ष और जिजीविषा दुनिया के किसी भी हिस्से में एक दूसरे से अलग नहीं होते। साहित्य ही समत्व का वह प्रतिमान है, जो हमें एक-दूसरे से जोड़ता है। आज के उदारीकरण और भूमंडलीकरण के इस दौर में भी हमारे लिए अंतःक्रिया और संवाद का एक मात्र रास्ता यही है। अगर युवाकवि कल्लोल के शब्दों में कहूँ तो ‘पूरब को जानने के लिए पूरब घूमना जरूरी नहीं है?’ वस्तुतः तेलुगु समय-समाज या कहें अपने समय-समाज को जानने के लिए यह संग्रह ही काफी है। अनुवादक ने ठीक ही लिखा है—“जो कहानियाँ तेलुगु भाषी समाज के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करती हैं और जो आन्ध्रप्रदेश के विभिन्न भौगोलिक अंचलों के जन-जीवन के जीते-जागते चित्र को प्रस्तुत करती हैं, उनको इस संकलन में प्रमुखता दी गयी है।” यहाँ यह कहना आवश्यक हो जाता है कि बाहरी वैविध्य के बावजूद अपनी आंतरिक संरचना में साहित्य का यथार्थ एक ही होता है, क्योंकि वह मनुष्य की दुनिया के यथार्थ से सृजित होता है। अब्बूरिछायादेवी की कहानी ‘हमारे ये अड़ोसी-पड़ोसी’ में मानवीय संबंधों के जिस आत्मक्षरण को प्रतीकात्मक ढंग से कहा गया है, वह किसी भी समय-समाज के लिए चिंतनीय है। हमने शहरीकरण और उपभोक्तावाद के नाम पर जो दुनिया बनायी

* तेलुगु की तीस प्रतिनिधि कहानियाँ, अनुवादकडॉ. विजय राघव रेड्डी, मूल्य 250 रु., प्रकाशकग्रंथ सदन 27/109ए/3 भूतल, शंकर गली के सामने, ज्वालानगर, शाहदरा, दिल्ली-110032

**अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डी.एस.कॉलेज, कटिहार, पिन-854105, मो. नं. 09431867283

है, उसका सब से बड़ा संकट है स्वार्थ और संवेदनहीनता। अपनी जिम्मेदारियों से पलायन और दूसरे का उपभोग। यह कंक्रीट का जंगल है, जहाँ सारी क्रियाओं के केन्द्र में है अर्थ की क्रिया। पर्यावरण और अन्य जीवों की उपेक्षा स्वभाविक है। लेकिन क्या अपनी इस दुनिया में इतनी क्षुद्रता के साथ यह आदमी भी रह पाएगा? 'पराजिता' प्रेम के महत्त्व को समझानेवाली एक करुण कहानी है। राव के अहैतुक लगाव को विश्वम के पैसे के कारण ठुकरानेवाली पार्वती का आत्मशोध है यह। भौतिक सुख प्रेम का भवितव्य नहीं है, सब कुछ गँवाने के बाद ही समझ पाती है पार्वती। "मैं और चंचला" स्त्री और पुरुष के संबंधों को व्याख्यायित करने वाली एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। वही 'ओल्गा' की 'सहारा' एक संतुलित कहानी है। स्त्री-पुरुष के संबंधों की नियति कुछ ऐसी है कि हमेशा से पुरुष वर्चस्व के पीछे घर-परिवार के नाम पर वही कीमत अदा करती है, इसलिए विजयलक्ष्मी सहारा का अर्थ सेवा कहती है, मगर यह कहानी अपने अंत में जिस निष्कर्ष तक आती है, वही महत्तर है। सचमुच अगर इतना ही होता तो ये स्त्री-पुरुष इतने लम्बे समय से एक साथ कैसे रह सकते थे? हिन्दी में जहाँ स्त्री स्वातंत्र्य और अधिकार पर विमर्श चल रहा है, वहीं सहारा इसे बड़ी स्वाभाविकता से चिरपरिचित क्षितिज प्रदान करती है, लेकिन इसपर और कुछ कहना खतरे से खाली नहीं है। हाँ गंगाधरम इस बात को जितना जल्दी समझे, उतना बेहतर।

कालुव मल्लय्या की कहानी 'साहेब की ड्योढ़ी' कतिपय अंतर्विरोधों के बावजूद पुरानी सामंती व्यवस्था के पतन की कहानी है। शोषण, दमन, आतंक और अन्याय के बल पर गाँव को जागीर की तरह इस्तेमाल करनेवालों के लिए गाँव की स्थिति अब अनुकूल नहीं है। तेलंगाना का सच यही है। लेकिन इस समस्या को कहानी में एकांगी रूप में नहीं उठाया गया है। नयी बदली हुई स्थिति भी बहुत मानवीय और गरिमापूर्ण नहीं है। मल्लय्या की कहानी में दृष्टि बिन्दु का तनाव मार्मिक है। इसी तरह चन्द्रशेखर आजाद की कहानी 'पेड़' भी एक विलक्षण कहानी है। आधुनिकता, शहरीकरण और अब उदारीकरण और भूमंडलीकरण के नाम पर हमारी आस्था, उम्मीद, स्मृति इतिहास को पिछवाड़े में धकेल कर जो खड़ा किया जा रहा है, वह खतरनाक है। यह कहानी सिर्फ 'पेड़' के कटने की नहीं, सम्पूर्ण सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण को उजाड़कर हमारे आकृति और विचारों को तोड़कर, हमारे आत्म-कथ्य को खाली कर जीने के लिए मजबूर किये जाने वाली परिस्थिति को उजागर करती है। आश्चर्य यह भी है कि किसी कारण से हम इससे सहयोग भी कर रहे हैं। 'कुवैत सावित्रम्मा' कहानी का शीर्षक अगर 'सावित्रम्मा ही होता तो भी स्त्री होने की त्रासदी में कोई कमी नहीं आती। सदियों से कभी सत्ता, कभी धर्म तो कभी अर्थ के नाम पर हमने स्त्रियों को जीने के लिए एक 'कुवैत' दिया है। दूसरी तरफ चित्तुर्वमधु की कहानी 'तेरे जैसा तू' एक नई उम्मीद के साथ क्लोनिंग की अन्य

परिणतियों से अनजान एक चौंकाने वाली कहानी है। इस पर सचेत विमर्श की आवश्यकता है।

गाँव और शहर के असामान्य विकास को रेखांकित करनेवाली कहानी है 'सोने की बेड़ियाँ'। सरकारी परियोजनाओं के पीछे जो भी तर्क हों, सच्चाई यही है कि इस सदी की कई प्राकृतिक आपदायें, मनुष्य के अधिकाधिक भोग और लालच की परिणाम हैं। कल्याणी बाँध से यहाँ भी अकल्याण हुआ, स्वर्णामुखी सूख गयी। नदी के सूख जाने से उनका जीवन डूब गया। क्या यह केवल आन्ध्रप्रदेश की कहानी है? विकास के नाम पर विस्थापन की पीड़ा भोग रहे लोगों के दर्द की क्या कीमत है पूँजी के बाजार में? लेकिन यहाँ सवाल उठता है कि हम किसे और क्या उजाड़कर मुआवजा दे रहे हैं? प्रगति का यह व्याकरण प्रकृति की दुर्दशा का व्याकरण है। लोहे की बेड़ियों से खतरनाक हैं सोने की बेड़ियाँ, जिन्हें हम चाहकर भी काटने में असमर्थ हो रहे हैं। लेकिन जिन्हें काटे बिना हमारी मुक्ति भी संभव नहीं। 'इतराते शरीफ और पिसते गरीब' में भी यह मुक्ति तभी संभव है, जब माढ़िगा लोग बड़े लोगों की राजनीति का कुत्सित यथार्थ समझें, वर्ना कितने ही ओबिगाडु और एगिटि उनके जातिगत वर्गीय स्वार्थ की बलि चढ़ते रहेंगे। संग्रह की कुछ कहानियों को पढ़कर आसानी से यह समझा जा सकता है कि आन्ध्रप्रदेश में किस वजह से नक्सलियों के आन्दोलन का औचित्य है। कुछ कहानियाँ इसका पूर्वाभास देती हैं।

कहना नहीं होगा कि इस संग्रह की सारी कहानियाँ अपने समय-समाज की बहुलतावादी सामाजिक संरचना का पोस्टमार्टम करती हैं। चाहे वह, वी.आई.पी. आदमखोर, नेह का चाँद धूमिल हो गया या घड़ियाल का मुँह जैसी कहानियाँ हों या पृथ्वी जैसी। साम्प्रदायिक अलगाव, भूख, बेकारी, शोषण-दमन, जातिगत भेदभाव, यौन हिंसा से लेकर दलितों के साथ होने वाले दुर्व्यवहारों को उकेरने वाली कई कहानियाँ हैं इस संग्रह में। मुखौटा, दीमक, काँच का गिलास फूट गया आदि कहानियों में बदले हुए समय-समाज का विद्रूप यथार्थ यहाँ-वहाँ एक सा लगता है।

डॉ. विजय राघव रेड्डी भले ही इन कहानियों के माध्यम से आन्ध्रप्रदेश के चारों अंचलों कालीगांध्र, दक्षिणांध्र, तेलंगाना और रायलसीमा के पिछले चालीस वर्षों का समग्र यथार्थ प्रस्तुत करना चाहते हों, पर कतिपय अपवादों के बावजूद यही यथार्थ भारतवर्ष के पिछले चालीस वर्षों का है। वेंकटरामि रेड्डी की कहानी 'नयी चादर' पढ़कर प्रेमचन्द की याद नहीं आए ऐसा नहीं हो सकता। लगता है वेंकटरामि रेड्डी प्रेमचन्द स्कूल के कहानीकार हों। उनकी कई कहानियों का एक कोलाज है इसमें, मसलन 'बूढ़ी काकी', 'पूस की रात' आदि। रामय्या के औदात्य के सामने कितना ओछा है ओबन्ना का विचार? यह ओछापन पहले से अधिक बढ़ा है, वह भी पूरी आक्रामकता और नृशंसता के साथ। कहानी उतनी ही ताकत से ट्रीटमेंट और प्रभाव के स्तर पर अमानवीकरण की इस प्रक्रिया का प्रतिरोध करती है। इतना ही नहीं, इनमें

से किसी भी कहानी का अंतरण, किसी भी समय-समाज को जानने के लिए किया जा सकता है। अब, 'वह मुस्कुरायी' कहानी को ही लीजिए, इस कहानी का यथार्थ मर्म को छू जाता है। अमला बिमला कमला..... इन नामों का अगर सामान्यीकरण नहीं भी करें, तो उस दफ्तर से बाहर पैसे के बाजार में आज इन्हें कौन हँसा रहा है? हर चीज के साथ किसकी देह और मुस्कान बिक रही है? कौन इन्हें जिन्स और माल में तब्दील कर रहा है? यह अवमूल्यन किस तरफ नहीं है? काशीनाथ सिंह की कहानी 'इक्कीसवीं सदी के देश का सफर में' जापानी प्रोफेसर कहता है कि मैंने पूरा यूरोप देखा है, अगर बाजार आएगा तो अपनी इन शर्तों पर आएगा। वासि रेड्डी सीतादेवी की इस कहानी की कथा-वस्तु के सहारे, आज के समय-समाज का नया बहुअर्थी पाठ लगाया जा सकता है। जैसे ही कहानी का पाठ-संदर्भ बदलता है, वैसे ही दफ्तर का रंगनाथ भूमंडलीकरण और बाजारीकरण की दुनिया का ताकतवर सांड नजर आने लगता है और अमलाएँ प्रतिरोधहीन घास। क्या यह केवल आन्ध्रप्रदेश की अमलाओं की कहानी है या तीसरी दुनिया का सच? सचमुच आन्ध्रप्रदेश की ये कहानियाँ समग्र यथार्थ की कहानियाँ हैं।

पाठकीय प्रतिक्रिया

'चिन्तन-सृजन' जैसी श्रेष्ठ, स्तरीय पत्रिका का नियमित, सुंदर प्रकाशन प्रणम्य है। मैं स्वयं ऐसे प्रयास कर तीन-तीन बार विफल रहा, अतः मेरी दृष्टि में यह एक स्तुत्य पुरुषार्थ है। जुलाई-सितम्बर 2008 के अंक में छपा श्री रमेश दवे का पत्र सर्वथा उपयुक्त है। इस पत्रिका को विश्वविद्यालयों एवं उच्च विद्या केन्द्रों में पहुँचना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो।

जुलाई-सितम्बर 2008 अंक में डॉ. लोकेश चन्द्र का लेख बहुत अच्छा लगा। शल्यजी वाला आलेख तो भारत भवन में सुना और फिर पढ़ा भी था। वह गम्भीरता से मननीय है। कोसी पर आपका लेख अत्यावश्यक था, सम्पादकीय भी। देवेश जी का भी। **रामेश्वर मिश्र पंकज, निदेशक, निराला सृजन पीठ, भारत भवन, भोपाल-462002।**

प्रारंभ से ही मैं चिन्तन-सृजन का पाठक रहा हूँ। कभी-कभार मैं उस के लिए रचनात्मक सहयोग भी देता रहता हूँ। जुलाई-सितम्बर 2008 के अंक में प्रकाशित दो आलेखों ने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया। वे हैं- श्री रमेश दवे का *इतिहास और साहित्य: स्मृति और स्वप्न* तथा गुजंन अग्रवाल का *राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्*। इन दोनों अलेखों में प्रतिपादित कथ्य को बुरंजी ग्रंथों की अवधारणा से तुलना करने की दृष्टिसे यह लिख रहा हूँ।

मैं देश के पूर्वोत्तर राज्यों के इतिहास, समाज, संस्कृति और साहित्य से थोड़ा बहुत परिचित हूँ, हिंदी में उन पर कुछ लिखा भी। तेरहवीं सदी से लगभग छह सौ वर्ष तक ताई भाषी अहोमों ने असम में शासन किया। आज हम जब कि इतिहास, पुराण, साहित्य और उनके पारस्परिक संबंध को लेकर तथा इन विषयों से संबंधित भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तन की चर्चा कर रहे हैं, उस पर अहोम शासकों को बड़ी समझ थी। मुझे यह जानकारी देते हुए अमित हर्ष हो रहा है कि अहोमों ने अब से 8-9 शताब्दियों से पहले बुरंजी के नाम से ताई भाषा में जिन रचनाओं की कल्पना कर उन के माध्यम से ताई लिपि में इतिहास लेखन को प्रोत्साहित किया, वे रचनाएँ इतिहास और साहित्य का ऐसा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करती हैं जिसकी कोई मिसाल नहीं। बुरंजी रचनाओं की मान्यता रही है कि इतिहास और साहित्य दो अलग-अलग शब्द हैं। लेकिन वे एक

दूसरे पर आश्रित हैं। एक को छोड़कर दूसरा पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। बुरंजी ताई भाषा का शब्द है इसका विश्लेषण यों किया जाता है; बुरण्जी; बुन्मूर्ख (अज्ञानी), रणत्रिशिक्षा (ज्ञान), जीन्कोश (भंडार); अर्थात् अज्ञानी को ज्ञान देनेवाला भंडार है। यह भी कहा गया है कि अपने इतिहास को न जानना शर्म की बात है। अहोमों के शासन काल में इतिहास की चर्चा आवश्यक काम माना गया है। अहोम लोग मानते थे कि इतिहास में भी साहित्य होता है और साहित्य में भी इतिहास। उनका मानना है कि ऐतिहासिक तथ्य और साहित्य एक दूसरे पर आधारित भी होते हैं। इतिहास की श्रेणी में ग्राह्य साहित्य को वे बुरंजी की संज्ञा देते हैं। बुरंजी ग्रंथ कोरे इतिहास नहीं हैं। केवल राजवंशावली, किस राजा के अधीन कौन से इलाके थे? उसके राज्य काल में कब-कब, कहाँ-कहाँ युद्ध हुए? कौन जीता और कौन परास्त हुआ? केवल ये ही तथ्यात्मक विवरण बुरंजी में नहीं मिलते। राजनैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक व सांस्कृतिक विषय भी बुरंजी के उपादान माने जाते थे। और तो और, अहोमों के शासन काल में ऐतिहासिक तथ्य जुटाने एवं उनके रख रखाव के लिए कर्मचारी रखे जाते थे और सरकारी भंडार (ग्रंथालय) की व्यवस्था थी, उसे सरकारी गंधीया भंडार कहते थे।

असम में बुरंजी जो है, उसे साहित्य के नाम से जाना जाता है। इतिहास के साथ साहित्य के भी कुछ लक्षण बुरंजी ग्रंथों में मिलते हैं। साहित्य के कलापक्ष का भी, जैसे उपमा, रूपक आदि अलंकारों का भी, समावेश इनमें हुआ है। साहित्य-धर्मिता इन में देखी जा सकती है। इस दृष्टि से ये काव्य की श्रेणी में भी गिनाये जा सकते हैं।

नीरस घटनाओं का क्रमिक वर्णन बुरंजी ग्रंथों का लक्ष्य नहीं था। बुरंजी ग्रंथों के प्रख्यात विद्वान और अध्येता डॉ सूर्यकुमार भूजां ने अपना अभिमत यों प्रकट किया है: 'बुरंजी की बातें सूखी अस्ति चर्म भर नहीं हैं, उनमें भावनाओं के आवेग के सुगंध भी हैं। इसलिए बुरंजियों को मात्र इतिहास न मानकर साहित्य के वर्ग में स्थान दिया जाता है।'

जैसे पहले कहा गया बुरंजियों की घटनाएँ कोरी कल्पनाएँ नहीं हैं, वे प्रामाणिक हैं, इनमें सत्य छिपाने की चेष्टा नहीं की गई है; निर्भीक होकर निरपेक्ष दृष्टि से घटनाओं को यथावत अंकित करने की परंपरा इनमें देखी जाती है। यदि कोई राजा चरित्रहीन हो, राज-मर्यादाओं के अनुकूल उसका व्यवहार न हो तब निस्संकोच उसका जिक्र किया गया है। बुरंजियों की घटनाओं को अन्य प्रमाणों से मिलान कर सर एडवर्ड गैट ने अपनी पुस्तक The History of Assam में लिखा है कि, 'बुरंजी ग्रंथ सत्य पर आधारित हैं। वे कहते हैं कि मुसलमान इतिहासकारों के लिखे तथ्यों से बुरंजियों के तथ्यों की सच्चाई का सबूत मिलता है। इनमें लिखे वर्ष और तिथियों के समर्थन, ताम्रफलक, मुहर, राजाज्ञा आदि से भी होता है।'

भारत का समाज धर्मपरायण रहा है। इसमें भक्ति, आध्यात्मिकता, त्याग, तपस्या की भावनाओं की प्रधानता रही है। इसलिए बुरंजी साहित्य पर आध्यात्मिकता आदि का पुट होना स्वाभाविक माना जाएगा। इसलिए तत्कालीन लोकजीवन से ओतप्रोत आध्यात्मिक आदर्श आदि कुछ भाव-प्रधान बुनियादी बातें उनमें मिलती हैं। आध्यात्मिकता की बातों के आगार हैं हमारे पुराण। इस नाते बुरंजी ग्रंथों की हम पुराणों से तुलना कर सकते हैं। इतिहास, साहित्य, पुराण आदि भारतीय चिंतन में इस तरह जुड़े हुए हैं कि उनके बीच स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना असंभव सा लगता है। पाश्चात्य व्यामोह में प्रवाहित आज के हम अपनी जड़ों सेकट गये हैं। पाश्चात्य चिंतन हमारे ऊपर हावी है। पाश्चात्य चिंतन से जनित पारिभाषिक शब्द जैसे भेजवतलए छंजपवदए इनसजपसपदहनंसपेउएँ मबनसंतपेउएँ बसजनतमए डलजीवसवहल आदि अनेक हमारी मूल धारणाओं से मेल नहीं खाते। इतिहास, राष्ट्र, भाषिक बहुलता, धर्म निरपेक्षता, संस्कृति, पुराण ये क्रमशः अंग्रेजी के History, Nation, Multilingualism, Secularism, Culture, Mythology के समतुल्य नहीं है।

प्राक् एवं पश्चिम चिंतन के अंतर को स्पष्ट करते हुए दक्षिण पूर्व एशिया के भाषाविद अली सजबाना ने दोनों संस्कृतियों को इस प्रकार की संज्ञा दी; प्राक् संस्कृति अभिव्यक्तिपरक है; त्याग-तपस्या से संबंधित है, सर्वमानव सौभ्रात्व से ओतप्रोत है, यहाँ का चिंतन संश्लेषणात्मक है, जबकि पश्चिम संस्कृति प्रगतिपरक है, भौतिकवाद से संबंधित है, व्यक्तिपरक है और वहाँ का चिंतन विश्लेषणात्मक है।

ये ही कारण हैं कि जहाँ हम पुराण, साहित्य और इतिहास को एक दूसरे से अलग अलग न रखकर सर्वदा एक दूसरे से भिन्न नहीं मानते हैं। इस संदर्भ में नन्नय (611वीं सदी) ने महाभारत को तेलुगु में प्रस्तुत करते हुए भारत कथा प्रस्तानम् में जो कहा है वह यहाँ स्मरणीय है, जिसमें धर्म, आध्यात्म नीति, साहित्य (काव्य), इतिहास एवं पुराण के अभिन्नाभाव संबंध की चर्चा है। पहले देवनागरी लिपि में नन्नय की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं:

*“धर्मतत्वञ्जुलु धम्रशास्त्रम्बनि, याध्यात्म विदुलु वेदांत मनियु
नीतिविचक्षणुलु नीतिशास्त्रम्बनि, कविवृषभुलु महाकाव्य मनियु
लाक्षणिकुलु सर्वलक्ष्य संग्रहमनि, ऐतिहासिकुलितिहासमनियु
बरम पौराणिकुलुबहु पुराण समुच्चयम्बनि महि गोनियाडु चुंड
विविध वेदतत्व वेदि वेदव्यासुडादिमुनि पराशरात्म जुंडु
विष्णुसन्निभुंडु विश्वजनीनमें परगुचुंड जैसे भारतम्बु।।”*

अर्थात्-

“जिसे धर्मज्ञ धर्म शास्त्र के रूप में, अध्यात्मविद वेदांत के रूप में, नीतिज्ञ नीति शास्त्र के रूप में, कविगण महाकाव्य के रूप में, लाक्षणिक सर्व लक्षण संग्रह के रूप में,

इतिहासकार इतिहास के रूप में और पुराणवेत्ता कई पुराणों के समुच्चय के रूप में गुणगान करते हैं, ऐसे इतिवृत्त को व्यास महर्षि ने महाभारत में परिणत किया है”

स्पष्ट है कि हमारा ही नहीं अपितु दक्षिण पूर्व एशिया ही नहीं पूर्ण एशिया अर्थात् प्राक देशों की चिंतन-सरणी में समानता है जो पश्चिम से भिन्न है। हमारा चिंतन संश्लेषणात्मक है न कि घोर विश्लेषणात्मक। इस संदर्भ में साहित्य के इतिहास लेखन, विशेषकर हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन, पर अपनी बात कहने का मैं लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। हिंदी का देश में विशिष्ट स्थान है, हिंदी साहित्य का भी होना चाहिए। हिंदी साहित्य को भारतीय साहित्य का प्रतिरूप व प्रतिनिधि साहित्य बनना चाहिए। हिंदी में इतर भारतीय साहित्य से पर्याप्त वाङ्मय मौलिक रूप में भी एवं अनूदित होकर भी आ रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों से मैं यह नहीं कहता कि वे हिंदीतर भाषाएँ सीखें और उन भाषाओं में लेखन और अनुवाद करें। इतना तो कह सकता हूँ कि जो सामग्री उन भाषाओं से हिंदी में आ रही है, उसका अवलोकन करें जहाँ हिंदीसाहित्य के इतिहास लेखन में उस का समावेश हो सकता है, वहाँ करें, जिससे कि हिंदी साहित्य को भारत के प्रतिनिधि साहित्य की संज्ञा मिल सके।
डॉ. विजयराघव रेड्डी, विजयविलासम्, 3-13-1/10, श्रीनिवासपुरम, रामान्तपुर, हैदराबाद-500 013.

सृजन में चिन्तन एवं चिन्तनमय सृजन का अभाव चहुँओर मुँह बाएँ खड़ा है। पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय; उनके कलेवर, मानवोचित आचरण-विचरण के अनुरूप रूपायित होने चाहिए। आस्था भारती दिल्ली की ‘चिन्तन-सृजन’ त्रैमासिक, जनमानस के मूलभूत संस्कारों में जाकर हिन्दी/हिन्दी साहित्य की गरिमामयी आस्था/थाती का निर्वहन करती है। जबकि अधिकांशतः पत्र/पत्रिकाओं के संपादक चिन्तनयुक्त सृजन को छू तक नहीं पाते। यहाँ तक कि बहुतायत में संपादकीय लिख भी नहीं पाते।

संपादक कुमार नागरिक कर्तव्याकर्तव्य का संज्ञान कराते हैं वहीं सुविज्ञ पाठकों को साहित्योन्मुख विषय वस्तु से साक्षात्कार कराते हैं। वह इसलिए भी है क्योंकि सुधी परामर्शदाताओं का पथ प्रदर्शन उन्हें उपलब्ध है। एक और एक ग्यारह। वाह्य आक्रांताओं ने भारत में सैकड़ों-सैकड़ों वर्ष अपने अधिकारों के बल पर ही राज्य किया और देशवासी अपने केवल कर्तव्यों में बँधे पददलित होते रहे। देश स्वतंत्र हुआ, स्वराज हैयहाँ। किन्तु आज देश का जन अपने अधिकारों की गुहार में कर्तव्यच्युत हो गया। देश की सम्पत्ति, फौज/ पुलिस जैसे इनके लिए बेमानी हैं; तोड़फोड़ जैसे स्वतन्त्रता की घुट्टी में पी ली इन्होंने। दरअसल देशवासी भौतिक रूप से स्वतन्त्र हुआ मानसिक रूप से अभी तक परतन्त्र है।

पत्रिकाओं व पत्रों में, भाषाविदों व चिंतको द्वारा भूत-वर्तमान-भविष्य की सम्यक दृष्टि का सुधी पथ प्रदर्शन, परिपालन अत्यावश्यक है। ‘चिन्तन-सृजन’ त्रैमासिक

यह निर्वहन कर रही है। आशा ही नहीं प्रत्युत वृद्ध विश्वास है कि यह सृजन यथावत् बना रहेगा। **बैनीकृष्ण शर्मा, संपादक: अंजुरि; ‘लायक नीड’ आर 1/17, (नवादा हाऊसिंग काम्प्लैक्स), जैन रोड़, नजफगढ़ रोड, नई दिल्ली-110 059.**

मैं ‘चिन्तन सृजन’ के अंक पढ़ती रही हूँ। प्रकाशित लेखों को पसन्द करती हूँ क्योंकि इनके विषय हमारी संस्कृति से जुड़े होते हैं। अ.भा.सा.प. के दिल्ली अधिवेशन में गत वर्ष आपको मैंने सुना भी था, परंतु भेंट नहीं हुई। श्री शत्रुघ्न प्रसाद से अवश्य वहाँ भेंट हुई थी, ‘चिन्तन-सृजन’ पर चर्चा भी हुई थी। **क्रांति, 203, टॉवर-3, साईनाथ स्ववेयर, मदर्स स्कूल के पीछे, जलाराम चार रास्ता, वडोदरा-390021.**

‘चिन्तन-सृजन’ का जुलाई-सितम्बर 2008 अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में मेरा आलेख प्रकाशित करने के लिये आपको कोटिश: धन्यवाद।

‘चिन्तन-सृजन’ में आदरणीय लोकेश चन्द्र के अपने पूज्य पिता प्रातः स्मरणीय आचार्य रघुवीर पर लिखे एक-से-बढ़कर-एक आलेख प्रकाशित हो रहे हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। शब्दस्रष्टा डॉ. आचार्य रघुवीर (1902-1963) के प्रिय शिष्य और मेरे गुरु पुण्य लोक प्रो. (डॉ.) हरवंशलाल ओबराय (1925-1983) यूरोपीय देशों में ‘सेकेन्ड विवेकानन्द’ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। यह सुसंयोग है कि डॉ. रघुवीर एवं डॉ. ओबराय -दोनों रावलपिण्डी (पश्चिमी पाकिस्तान) के निवासी थे। दोनों ने भारतीय संस्कृति, कला एवं साहित्येतिहास के अन्वेषण में संसार की प्रदक्षिण की। डॉ. रघुवीर सन् 1962 में भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष निवसंचित हुए तो डॉ. ओबराय सन् 1960 एवं 1961 में लगातार दो बार अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष मनोनीत होने के ठीक बाद यूनेस्को के निमन्त्रण पर यूरोप, अमेरिका, कनाडा और एशियाई देशों (कुल 126 देशों) के विश्वविद्यालयों में “हिंदू संस्कृतित एवं दर्शन” विषयक व्याख्यानमाला प्रस्तुत करने गये। इसी बीच सन् 1963 में आचार्य रघुवीर के आकस्मिक निधन से डॉ. ओबराय को गहरा आघात लगा था और सन् 1965 में उन्हीं की स्मृति में डॉ. ओबराय ने राँची में ‘सरस्वती विहार’ के नाम के अनुरूप ‘संस्कृति विहार’ (एकेडमी ऑफ इण्डियन कल्चर) की नींव डाली जिसके द्वारा तकरीबन ढाई दशकों तक समूचे छोटानागपुर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार, शोध, बनवासी - बन्धुओं के उत्थान एवं ईसाई पादरियों की रोकथाम की दिशा में उल्लेखनीय कार्य संपादित हुआ था।

यह भी एक अजब संयोग है कि दोनों ही महापुरुष अपनी मातृभूमि की सेवा करते हुए दुर्घटनावश असमय ही हमसे दूर चले गये। **गुंजन अग्रवाल, साहित्य भारती प्रकाशन, गोपी-कृष्ण पैलेस, भिखना पहाड़ी, पटना-800004 (बिहार)**

DIALOGUE QUARTERLY

Journal of Astha Bharati, Delhi

Special Numbers:

Illegal Migration from Bangladesh
Central Asia
Fiscal Mismanagement in North East India
Maoist Insurgency in Nepal and India
India: Security Dimensions,
Indian Islands: Andaman & Nicobar Islands and Lakshadwip
South-East Asia
Secularism: India in Labyrinth
India's Neighbourhood
Governance in the North-East
Policing in India
India and Central Asia
Population Issues
Naxalism
Indo-Pakistan Relations & Kashmir
Media in India
India's North East
India: Political Culture, Governance & Growth
Understanding India
India: The Internal Security
Education in India
India's eastern Neighbourhood & 'Look East' Policy
Caste, Community and Social Justice
India's Encounter with the West
Kashmir
Bangladesh

With Best Compliments
from
VASUNDHARA IMPEX (P) LTD.
Administrative Office
LG-69, World Trade Centre,
Babar Lane, New Delhi-110001

Regd. Office
1/3575, Netaji Subhash Marg, Darya Ganj,
New Delhi-110002 Phone Off. 3277883, 3711848

*We Strive
to Satisfy
Our Customers*

VASUNDHARA MARKETING CO.

Sales Tax No. LC/13/017261/1080

☎ 3277883 (Off.)

Regd. Office

**1/3575, Netaji Subhash Marg
Darya Ganj, New Delhi- 110002**